प्रकाशक :
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय.
महावीर बाजार, ब्यावर (राज०)

लक्ष्मीचन्द तालेड़ा
अध्यक्ष

अभयराज नाहर
मन्त्री :



मुद्रक:—श्री मदनलाल शर्मा के प्रबन्ध से
★ गणेश प्रिंटिङ्ग प्रेस, लोहिया बाजार, ब्यावर में मुद्रित ★

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्व,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला ।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

दो शब्द

सन्त और साहित्य जीवन-निर्माण के मुख्य अग माने गए हैं। सन्तो की सगति मे पहुँच कर और साहित्य का स्वाध्याय कर कितने व्यक्तियो ने अपने जीवन का निर्माण किया--यह किसी से परामर्श कर पूछने जैसी बात नहीं है। इस बात की समझ तो प्रत्येक व्यक्ति को समय समय पर अपने आप होती रहती है।

दानव को मानव और मानव को अमर बनाने वाले सन्त जन ही होते है। सन्तो का जीवन बडा भव्य और विराट होता है। उनमे सदा दिव्य-सौन्दर्य भरा रहता है। 'सत्य' 'शिवं' के साथ 'सुन्दरं' का सुन्दर समागम भी तो सन्तों के जीवन मे ही मिलता है।

जिस से हित होता है वह साहित्य कहलाता है। सन्तो के अन्तर्हृदय से उद्गत उदात्त वाणी के सचमुच साहित्य है। सन्तो की सीधी-सादी भाषा ही सर्व-साधारण की हित-साधना कर सकती है, इसलिए उसे 'साहित्य' कहना अनुपयुक्त न होगा। सर्व-साधारण के समझ मे आने वाला साहित्य ही गाँवो और नगरो मे रहने वाली कोटि कोटि जनता का साहित्य बन सकता है। सन्तो के मुखारविन्द से नि.सृत वाणी को प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ जाता है और उससे वह अपने जीवन का निर्माण भी कर लेता है। इसलिये सन्तो की वाणी ही ससार का सर्वोत्तम साहित्य है।

स्वर्गीय श्रीयुत श्रद्धेय जैन दिवाकरजी महाराज भी एक महान् सन्त थे। सन्त जीवन की सुशोभा उनमे विराजमान थी। उनके उपदेश बड़े सीधे-सादे सरल और सुमधुर होते थे। वे जहा भी अपना पदार्पण करते, वहाँ उनका उपदेश सुनने के लिये सहस्रो की सख्या में मानव-मेदिनी उमड पड़ती थी। आबाल वृद्ध मानव मानवी उनके उपदेश मे पूरा २ लाभ उठाते थे। सचमुच वे एक आकठ- सभृत, सुस्थान सस्थित, पीयूप-पेय-पावन पानीय परिपूरित एक कूप के समान थे। जहाँ बालक-बालिका युवक-युवती वृद्ध और वृद्धा सभी यथाभिलषित पानी को प्राप्त कर अपनी चिरन्तन प्यास बुझा सकते थे।

प्रस्तुत पुस्तक उन्ही महान् सन्त की वाणी से सकलित साहित्य का एक मूर्तरूप है। इसका नाम दिवाकर दिव्य-ज्योति है। इस 'ज्योति' के नौ भाग पहले प्रकाशित हो चुके है। यह उसका दसवा भाग है। पहले के भागो की तरह इस पुस्तक मे भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो का संकलन किया गया है। पहले के विभागो से जैसे जिज्ञासुओ ने लाभ उठाया हैं, उसी प्रकार इस विभाग से भी जिज्ञासुगण अधिक से अधिक लाभ उठावे — यही इस हृदय की मगल कामना है।

'जैन स्थानक'
पिपलिया बाजार, ब्यावर
दिनाक २१-१-५५

मिश्रीमल मुनि 'मधुकर'

विषयानुक्रमणिका



सन्त-समागम



स्तुति :–

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारम्,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतज्जगदपूर्व शशाङ्कबिम्बम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! आपका मुख-कमल जगत् मे अपूर्व चन्द्रमा के समान देदीप्यमान हो रहा है । उसका नित्य–निरन्तर उदय रहता

है, मोहरूपी महान् अन्धकार को नष्ट करने वाला है, वहाँ तक राहु के मुख की और मेघा की पहुँच नही है-ये उसकी कान्ति को फीका नही कर सकते। ऐसे अद्भुत मुख-चन्द्र जिनका है उन्ही भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! भगवान् ऋषभदेवजी की तरह सभी तीर्थङ्करो को समझना चाहिए। उन्होने जगत् को सच्चा मार्ग बतलाया है। तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा लेकर जब साधु-अवस्था अंगीकार करते है, तब भी और जब तक छद्मस्थ रहते हैं तबतक उपदेश नही देते। ऋषभदेवजी एक हजार वर्षों तक साधना ही करते रहे। महावीर स्वामी साढे बारह वर्ष तक तपस्या में ही लीन रहे। जब उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई तभी उपदेश देना आरम्भ किया। पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से पहले जो बात कही जाती है, वह प्रमाणिक नही भी होती। आज कोई विद्वान् पुस्तक लिखता है और उसे प्रकाशित करा देता है। जब पुस्तक का दूसरा संस्करण निकलने लगता है तो उसमें काट छाँट कर देता है और तीसरी बार फिर उसमे फेरफार करता है। परन्तु केवलज्ञानी के वचनों मे कभी परिवर्त्तन नही हो सकता, क्योकि उसमे त्रुटि नही हो सकती। उसकी बात किसी की समझ मे आए अथवा न आए, यह तो उस के ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर है। क्षयोपशम अच्छा होगा तो बात समझ मे आ जायगी और क्षयोपशम न होगा तो नही आएगी। परन्तु इतने मात्र से तीर्थङ्कर के वचन मे अन्यथापन नही आ सकता है।

इस जगत् मे जितने भी तीर्थङ्कर हो गए हैं, सब ने एक समान ही रास्ता बतलाया है। सब का उपदेश एक ही है, क्योंकि

उनके ज्ञान मे पूर्णता होती है। अन्तर पडता है ज्ञान की अल्पता के कारण, जहाँ पूर्णता है वहाँ कोई अन्तर नही, मतभेद नही, त्रुटि नही, भूल नहीं हो सकती।

एक बैरिस्टर किसी फरीक को मसविदा-लिखकर देता है और कहता है कि जाओ, तुम मुकदमा जीत जाओगे। फरीक जाता है और जब सामने दूसरा बैरिस्टर खडा होता है तो वह उस मसविदे की घज्जियाँ उडा देता है यद्यपि यह ठीक हो सकता है कि पहले बैरिस्टर ने अपनी समझ मे कोई त्रुटि नही रहने दी, किन्तु दूसरा जब उसमे त्रुटिया निकालता है तो मानना पड़ेगा कि कही कोई त्रुटि रह ही गई है। इसका कारण बैरिस्टर का अपूर्ण ज्ञान है। जितने भी अपूर्ण ज्ञानी होगे, उससे त्रुटि हो ही जायगी। इसी कारण तीर्थङ्कर देव पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर ही धर्मोपदेश देते है। जब तक उन्हे कैवल्य न प्राप्त हो जाय, वे उपदेश नही देते। यही कारण है कि उनकी वाणी त्रिकाल अबाधित है, ध्रुव सत्य है। उसमें कभी अन्तर आया नही और आयेगा भी नही। जैसे दो और दो चार होते है, यह ध्रुव सत्य था और रहेगा उसी प्रकार तीर्थङ्करो ने जो मार्ग बतलाया है, वह भी ध्रुव सत्य है।

भगवान् ने बतलाया है कि दो बाते एक साथ नही रह सकती। वे दो बाते कौन सी है? सुनिये —

ब्रह्मज्ञान और विषयवासना, एक ठौर नही पाते हैं।
चोर शाह, दो तेग म्यान मे हरगिज नही समाते है॥

दो बाते एक साथ नही हो सकती। माल भी खाना-मौज

भी उडाना और वैकुंठ भी जाना ! भाई, साधु बन कर ब्रह्मज्ञान-आत्मज्ञान भी प्राप्त कर लो और मौज भी उड़ा लो, यह एक साथ नही बन सकता । आत्मज्ञान प्राप्त करना है तो मजा-मौज छोड़ कर साधना करनी चाहिए और मजा-मौज करनी है तो आत्म-ज्ञान से वञ्चित रहना पड़ेगा। या तो योग रहेगा या भोग रहेगा। दोनो की साथ-साथ नही निभ सकती । लाल मिर्च की आँखो के साथ नही बनती । कोई स्त्री पतिव्रता भी रहना चाहे और कुशील का सेवन भी करना चाहे तो कैसे उसका पतिव्रत निभेगा ? कोई आदमी बेईमानी भी करता रहना चाहे और लोगो मे तारीफ भी चाहे तो किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? चोरी करने वाला साहूकार नही रह सकता और साहूकार बनने की इच्छा करने वाला चोरी नही कर सकता । एक म्यान मे दो तलवारें नही समा सकती । भाई, या तो दुनिया के मुजे लूट लो या ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लो । दोनो करना चाहोगे तो नही कर सकोगे ।

मनुष्य का मस्तिष्क और हृदय कभी-कभी परस्पर विरोधी मार्ग बतलाने लगता है । मस्तिष्क कहता है,ईश्वर की ओर जाओ और हृदय कहता है कि दुनिया की मोज लूटो । प्रायः मनुष्य इन दोनो के झगड़े मे पड कर सत्य की राह से चूक जाता है । कदाचित् मस्तिष्क की बात मान कर सत्य की ओर आकर्षित होता भी है तो—

ज्ञानी के आश्रय मे जब जन मुक्तिहित आने लगते हैं।
ज्ञानाभिमान में चूर हुए तब ज्ञान ध्यान सब भगते है ॥

किसी ने सोचा—चलो भाई, ज्ञानी का आश्रय लो ।

ज्ञानी की सेवा करने से कुछ लाभ होगा। मुक्ति का मार्ग मिलेगा, साधना की राह दिखलाई देगी। यह सोच कर वह ज्ञानी की शरण मे गया। यही सोच कर और-और लोग पहुँचे। अपनी शरण मे लोगो को आते देख कर ज्ञानी फूला न समाया। उसने सोचा मैं ऐसा ज्ञानी हूँ कि लोग मेरे चरणो मे नतमस्तक होते है। मै सर्वपूजित बन गया हूँ! इस प्रकार सिर पर अहकार सवार हो गया तो सारा गुड गोवर हो गया! उसके भी ज्ञान-ध्यान भाग गये। यह अहकार बडा भारी दुर्गुण है। नाना रूपो मे यह मनुष्य को अपने अधीन बनाता है। कलदार वढे और अभिमान वढ़ा, बुद्धि खिली कि अभिमान भी खिला। पाच आदमी पूछने लगे कि घमण्ड बढ गया। जरा सा गुण आता है तो दुर्गुण भी उसके साथ भागा आता है। किसी को भला आदमी समझकर मुखिया बनाया और वही काटने दौड पडा!

भाइयो! जो मनुष्य प्रतिष्ठा या पूजी वढने पर भी सम-भाव मे रहता है, वही उन्नति करता है। जो जरा सा उन्नत होते ही आसमान मे उछलने लगता है, उसकी उन्नति तो रुक ही जाती है, वह अवनति के गहरे गर्त्त मे भी गिरे बिना नही रहता। दुनिया मे ऊँचा बनना वडा कठिन है। महाराज अगर "घणी खम्मा" मे ही राजी हो गये तो उनका कल्याण होना बहुत मुश्किल है। ऊँचा उठने के लिए अभिमान को त्यागना होगा। अभिमान को त्याग देने पर समभाव आता है और जब समभाव आता है तो "समो निंदापससासु" अर्थात् निंदा और प्रशसा मे समान भाव आ जाता है। कोई गाली देता हो तो नाराज नही

और स्तुति करता हो तो राजी नही। मान प्रतिष्ठा की आकांक्षा होना भी एक प्रकार की विषयवासना ही है और आत्मज्ञान के साथ उसकी नही पट सकती। कबीरजी कहते है-

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय।
दोउ पाट के बीच में साबित बचा न कोय॥
चक्की चले तो चलने दो पिस पिस मैदा होय।
कीले से लगता रहे तो बाल न बांका होय॥

कबीरजी किसी गृहस्थ के घर मे गये। वहाँ एक माई चक्की पीस रही थी। गेहुँओ का आटा होते देख कबीरजी रोने लगे और विचारने लगे कि इन दानो को बचने की कोई जगह भी है? तब उन्हे याद आया कि हाँ, है क्यो नही। चक्की चलती है तो चलती रहे और गेहूँ अगर आटा बनते हैं तो बनते रहे। मगर जो दाना कीली के पास पहुँच जायगा, उससे चिपट जायगा, उसका बाल भी बाका नही हो सकता। इसी प्रकार संसार के समस्त प्राणी विषय-वासना की चक्की मे पिस रहे हैं और अपने आत्मिक गुणो का चूरा कर रहे हैं। परन्तु इन सब मे जो आत्मा-परमात्मा के निकट पहुँच जाते हैं, उनका कोई कुछ भी नही बिगाड सकता। परमात्मा के निकट पहुँच जाने पर मनुष्य में ऐसी क्षमता आ जाती है कि वह निन्दा, अपमान, तिरस्कार को भी अमृत बना कर पी जाता है।

अगर कोई सत्सगति मे आता है तो कई लोग उसका उपहास करने लगते है। कहते हैं—अजी, यह तो अब बाबाजी

वनेंगे ! भाई, क्यो घर का काम छोड़कर बावाओं के पल्ले पड़ते हो ! इस प्रकार कहने वाले आप भी डूबते हैं और दूसरों को भी डुबाने की कोशिश करते हैं। मगर जो कीली के पास पहुँच जायगा, वह ऐसी बातो की परवाह नही करेगा । वह अपने निश्चय पर अचल-अटल रहेगा। परन्तु दूसरो को पथभ्रष्ट करते वाले अपने कर्मों का फल अवश्य पाएंगे ।

आप तो गुमराह हुए फिर औरों को गुमराह करे ।
ऐसे अजाबो से वहा पर मुँह सियाह हो जायगा ॥

आप नरक के द्वार पर खडा है, उसमे जाने को तैयार है और दूसरो को भी अपने साथ ले जाने की कोशिश कर रहा है! आप स्वय बुरे रास्ते पर चल रहा है और दूसरो को भी अपना साथी बनाने का प्रयत्न करता है। किसी तमाखू सूघने वाले के पास बैठो तो वह न सूधने वाले को तरह-तरह से ललचाता है और कहता है—अजी देखो तो सही, इत्र वाली तमाखू है। सूघोगे और छीके आयगी तो दिमाग खुल जायगा !

संस्कृत साहित्य मे भी तमाखू पहुँच गई है। एक कवि कहता है—

बिडौजा पुरा पृष्टवान् पद्मयोनिं,
धरित्रीतले मारभूतं किमस्ति ?
चतुर्भिमुखैरित्यवोचद् विरञ्चि.—
'तमाखुस्तमाखुस्तमाखुस्तमाखुः ॥'

पहले किसी जमाने में इन्द्र महाराज ने ब्रह्माजी से पूछा—आपने इतनी बडी सष्टि रची है तो यह तो बतलाइये कि इस भूतल पर सारभूत वस्तु कौन सी है ? तब ब्रह्माजी अपने चारों मुखों से एक साथ, एकदम बोल पडे –तमाखू, तमाखू, तमाखू, तमाखू !

हिन्दी के भी एक कवि कहते हैं—

तमाखू का सरड़का, सुणिया स्वर्ग मंझार ।
इन्द्र भी ले वासना, धन मानव अवतार ॥

गांजा पीने वाले कहते है—'जिसने नही पी गांजे की कली, उस लड़के से लडकी भली !

भाइयो ! कहो, क्या-क्या उक्तिया गढ ली हैं लोगो ने ! खुद उलटे रास्ते चलते हैं और दूसरो को भी उसी रास्ते ले जाना चाहते है। मगर इन पापो से काला मुंह हो जायगा। धर्म के कार्य मे अनेक विघ्न आते है और बहुत-से लोग बाधक होते हैं परन्तु ऐसे कामो को कोई नही रोकता ! ज्ञानी कहते है कि प्रथम तो लोग धर्म के नजदीक आते ही नही है और कदाचित् कोई आ जाय तो उसे धर्म-विमुख करने वाले बहुत मिल जाते हैं। धर्म-स्थान मे क्या मिलता है ?

ज्ञान रूपी गंगा के अन्दर जो जन कोई नहाता है ।
कर्म-मैल से मुक्त होये वह विश्वनाथ बन जाता है ॥

जैसे पानी से स्नान करने से ऊपरी मैल दूर हो जाता है, इसी प्रकार ज्ञान रूपी गगा मे स्नान करने से आन्तरिक मैल—कर्ममैल-दूर हो जाता है। कर्ममैल के हटने पर वह जीव परमात्मपद मे प्रविष्ट हो जाता है। विश्वपूजित वन जाता है। जिस सत्सग मे जाकर गाँजा पीना सीख जाय, वह वास्तव मे सत्संग नही है। वह कुसग है। वह कुसग से आत्मा का अहित ही होता है। आज दुनिया मे ऐसे सत्सग (!) करने वाले वहुत मिलते हैं, जिन्होने अनेक दुर्व्यसन सीख लिये हैं। मगर ज्ञान गगा मे स्नान करने मे तो एक बीडी का भी काम नही है। जो पुण्यात्मा इस ज्ञान गगा मे स्नान करते हैं, उन्हे अनुपम शान्ति की प्राप्ति होती है। उनके त्रिविध ताप का उपशमन हो जाता है। वास्तव मे वही सत्सग कहला सकता है जहाँ ज्ञान की चर्चा होती हो, तत्त्व का विचार होता हो, भगवान् का भजन होता हो या शास्त्र का स्वाध्याय होता हो। वहाँ विषय-वासना को वढाने वाली कोई चीज नही हो सकती अथवा नही होना चाहिए। सत्सग सम्बन्धी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सभी शुद्ध होने चाहिए। ऐसा सत्सग करके जो ज्ञान की अपूर्व गगा मे अवगाहन करता है, वही विश्वपूजित वन सकता है।

अध्यात्मज्ञान जो आर्य में है, वह नही अनार्य में आया है।
अय जीव ! नासमझ समझ इसे, तू ने मानव भव पाया है॥

भाइयो ! अध्यात्मज्ञान इसी आर्यदेश मे मिलता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अखिल विश्व मे, इसी भारतवर्ष की पवित्र भूमि मे, सर्वप्रथम आध्यात्मिक ज्ञान का सूर्य चमका

था। भारतवर्ष अतीत काल मे एशिया के सब देशो का धर्मगुरु रहा चुका है। भारत के धर्म-प्रचारक विभिन्न देशो मे पहुँचे थे और उन्होने वहा की प्रजा मे धर्म और अध्यात्म का प्रकाश फैलाया था। वे प्रचारक उस समय दूर-दूर देशों में गये थे, जब कि यातायात के साधन सुलभ नही थे। महीनो और वर्षो मे रास्ता तय किया जाता था।

और आज भी क्या स्थिति है? भौतिक दृष्टि से यह देश भले पिछडा हो किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से वह आज भी सब से आगे है। आज विनाश के सामने खड़े हुए विश्व को अगर कोई आशा बँधाने वाला देश है तो भारत ही है। भारत की आध्यात्मिक भावना ही ससार को शान्ति प्रदान कर सकेगी। धर्म की उपेक्षा करके संसार कदापि शान्ति प्राप्त नही कर सकता। भारत की प्रकृति धर्ममयी है और पवित्र धर्म का सन्देश भारत से ही मिल सकता है।

आप यूरोपीय देशो मे चले जाइए। वहां आपको क्या मिलेगा? वहां अणुबम मिलेगा, जहरीले गैस मिलेगे, और पिस्तोल मिलेगी। नर-सहार की साम्रगी आपको तैयार मिलेगी। मगर अमरता प्रदान करने वाली वस्तु नही मिल सकेगी? इसी लिए कहा गया है कि अध्यात्मज्ञान आर्यदेश मे ही मिल सकता है, अनार्य देश मे नही। वस्तुतः आर्य वही जो धर्म की मर्यादा मे रहे। जो धर्म की मर्यादा को ही नही मानता या उस मर्यादा मे नही रहता वह आर्य नही, अनार्य है।

चौवीसो तीर्थंकर और राम, कृष्ण आदि अवतार सभी

इसी देश मे उत्पन्न हुए हैं। उन्होने अध्यात्मज्ञान का प्रसार किया है। अनार्य देशो मे से किसने इनके मुकाबिले का एक भी महापुरुष प्रदान किया है? आर्य देशो का तो यह हाल है कि जो आर्य देशीय वहां विद्याध्ययन के लिए या व्यापार आदि के लिए जाते है, उनके भी सदाचार का ठिकाना नही रहता। उनके लिए मास मदिरा का सेवन साधारण बात हो जाती है। किसी का भाग्य और संस्कार ही अच्छे हो तो भले बच जाय। वहा का वातावरण ही ऐसा है। कहा है —

काजल का कोठरी मे कैसे हू सयानो जाय,
काजल को एक रेख लागि है पै लागि है ॥

काजल की कोठरी मे घुसने वाला कितना ही चतुर और सावधान क्यो न हो, कितनी ही बचने की कोशिश करे, मगर कही न कही एक रेखा लगे बिना नही रह सकती। इसी प्रकार वहा के वातावरण और खानपान मे मास-मदिरा आदि घृणित पदार्थों से बचना कठिन है।

ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि जिसने धर्म श्रद्धा का परित्याग कर दिया है और जिसे ईश्वर के प्रति विश्वास नही है, उसकी सोहबत मत करो। ऐसे अनार्य की बात मत मानो। जो ईश्वर और धर्म को नही मानता, समझ लो कि उसकी खोपड़ी मे भूसा भर गया है। ऐसा आदमी संगति करने योग्य नही है।

अनन्त काल भटकी आत्मा फिर भी मुक्ति नही पाती है।
ज्ञानी की आज्ञा को पाले, तब छिन मे कर्म खपाती है ॥

यह आत्मा अनादिकाल से ससार मे परिभ्रमण कर रही है। लोक का एक भी प्रदेश नही बच पाया कि जहा अनन्त बार इसने जन्म और मरण न किया हो । फिर भी अभी तक मुक्ति नही मिल सकी । इसका कारण यही है वह ज्ञानी की आज्ञा में नही चलती । ज्ञानी की आज्ञा मे चले विना मुक्ति प्राप्त नही हो सकती । जिस किसी आत्मा ने मुक्ति पाई है, ज्ञानी की आज्ञा मे चल कर ही पाई है । पूर्ण रूपेण ज्ञानियो की आज्ञा की आराधना करने पर मुक्ति प्राप्त होने मे विलम्ब नही लगता । ज्ञानी की सगति का प्रभाव ही ऐसा है ।

एक वार सयति राजा जंगल मे शिकार खेलने गया । उसने हिंरनो के यूथ मे से एक हिरण को तीर मारा । हिरन घायल होकर भागा और एक पेड़ के नीचे, जहा एक मुनिराज ध्यान मे लीन थे, जाकर गिर पड़ा । उसने प्राण त्याग दिये । उसके पीछे-पीछे घोडे पर सवार राजा भी वहा जा पहुँचा, इस विचार से कि हिरन को उठा कर ले जाऊँ । मगर राजा चौकन्ने होते हैं । उसने इधर-उधर दृष्टि घुमाई तो ध्यान मग्न मुनिराज को देखकर स्तब्ध रह गया । वह अपने अनिष्ट की आशका करके थर-थर काँपने लगा । राजा ने समझा कि यह हिरन इन्ही मुनिराज का है । मुनिराज क्रुद्ध होकर कहीं शाप न दे दे !

राजा, मुनिराज के समक्ष हाथ जोड कर खडा हो गया, परन्तु मुनिराज अपने ध्यान में लीन थे । वे आत्मा को स्वरूप मे रमण कर रहे थे । अतएव राजा से भी न वोले । राजा की घबराहट और अधिक बढ़ गई । उसने अत्यन्त ही करुण स्वर मे जब

क्षमायाचना और अभय की याचना की तो मुनिराज ने अपना ध्यान खोलकर कहा

अभओ पत्थिवा तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीव लोगम्मि, कि हिंसाए पसज्जति ? ॥

—उत्तराध्ययन, अ १८, गाथा ११.

हे राजन् ! मै तुझे अभयदान देता हूँ पर मेरी बात सुन । मुझे देख कर तुझको भय हुआ और अभयदान पाते ही प्रसन्नता हुई । इसी प्रकार यह जगल के जीव भी तुझे देखकर डरते हैं, अत तुम भी इन्हे अभयदान दो ! इस अनित्य ससार मे सदैव तो बने नही रहना है । एक न एक दिन परलोक जाना पडेगा । फिर क्यो हिसा मे आसक्त हो रहे हो ?

मुनिराज ने राजा को इस प्रकार समझाया, जिससे उसे ज्ञान हो गया । वह वही साधु बन गया । शुभ विचार आने पर उसे जातिस्मरण ज्ञान भी हो गया । बाद मे तपस्या करके केवलज्ञान और केवलदर्शन पाकर मोक्ष मे पहुँचा । यह है सगति का प्रभाव ! ज्ञानियो की संगति करने से पापी जीव भी पुण्यात्मा बन जाते है और अपना परम कल्याण कर लेते है ।

भाइयो ! ससार बडा विषम है । जैसे गाव के पास बहुत-सी पगडडियाँ होती हैं और अजनबी आदमी को यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि किस पगडडी से जाना उचित होगा? इसी प्रकार ससार मे आत्महित के अनेक पंथ हैं । उन सभी पंथो पर लोग चल रहे हैं और यह दावा भी करते हैं कि हमारे पंथ

पर चलने से ही आत्मा का कल्याण होगा। इस परिस्थिति में साधक पुरुष चक्कर मे पड जाता है। कभी गलत रास्ता भी अख्तियार कर लेता है। तब हित के बदले अहित हो जाता है। अतएव ज्ञानी पुरुषो की सगति की परम आवश्यकता है। उनकी शरण मे चले जाने के पश्चात् पथभ्रष्ट होने की संभावना नही रहती। वे आत्महित का अनुभूत मार्ग-जिस पर चल कर उन्होने आत्म-कल्याण किया है, प्रदर्शित करते हैं। अतएव प्रत्येक मुमुक्षु के लिए यही उचित है कि जब उसके अन्त.करण में आत्मकल्याण की पवित्र भावना उत्पन्न हो तो वह अपने जीवन को ज्ञानियों के चरणो मे सौप दे और उनकी आज्ञा मे ही चले। मुक्ति पाने का यही सरल और सीधा उपाय है।

केवलज्ञानी तीर्थंकरो ने उग्रतम साधना करके परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था और फिर जगत् के जीवो के कल्याण के लिए मोक्ष के मार्ग का निरूपण किया था। आज इस क्षेत्र मे केवलज्ञानी नही है, परन्तु उनके द्वारा प्रदर्शित पथ, शास्त्रो के द्वारा समझा जा सकता है। उसे समझने का प्रयत्न करो। विषय वासना को दूर करो। यह श्रेष्ठतम नरभव पाया है तो श्रेष्ठतम लाभ प्राप्त कर लो। जैसे सयति राजा ने अपने जीवन को कृतार्थ कर लिया, उसी प्रकार तुम भी धर्म की आराधना करके अपना जीवन सफल बनाओ। यह स्वर्ण-अवसर बार-बार नही मिल सकता। न जाने कैसे पुण्य के योग से मिल गया है। इस बार प्रमाद न करो। चूको मत। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा।

भविष्यदत्त–चरित—

भाइयो! पहले कहा जा चुका है कि भविष्यदत्त ने पोतनपुर-नरेश को और राजकुमार को वन्दी कर लिया। इसके पश्चात् पोतनपुर की सेना के जो बडे-वडे सरदार थे, वह सब भी बन्दी बना लिये गये। भविष्यदत्त उन सब को लेकर हस्तिनापुर-नरेश के पास पहुचा। उस समय उसे और हस्तिनापुर के राजा को कितनी प्रसन्नता हुई होगी? राजा ने भविष्यदत्त का खूब सत्कार किया और स्नेह से गदगद होकर अपनी छाती से चिपटा लिया।

अव हस्तिनापुर-नरेश और भविष्यदत्त हाथी पर आरूढ़ होकर नगर मे प्रवेश करने को तैयार हुए। वाजे बजने लगे और मगलगीत गाये जाने लगे। नियमित रूप से सवारी निकाली। राजा और भविष्यदत्त का हाथी बाजार मे पहुचा तो नगर-निवासी पुरुषो ने और नारियो ने दूसरे तीसरे मजिल से पुष्पों की वर्षा की। जगह-जगह मालाए पहनाई गई। दोनो हाथी पर चन्द्रमा और सूर्य की जोड़ी के समान सुशोभित हुए। इस प्रकार नगर मे होकर वे राजमहल मे आ पहुँचे।

राजा स्वय राजनीति का ज्ञाता था। वह राजकीय शिष्टाचार को भलीभाति समझता था। अतएव उसने अपने कर्मचारियो को हिदायत कर दी कि बन्दी बनाये हुए राजा, राजकुमार और सरदारो को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। सब की सुविधा का यथोचित ध्यान रक्खा जाय।

भाइयो! कर्मो की गति बडी विचित्र है। ससार मे रह

कर किसी भी वस्तु का घमण्ड करना योग्य नहीं है। पुण्ययोग से आपको कोई विशिष्ट सुख-सामग्री मिल जाय तो उसे पाकर नम्रता धारण करना चाहिए, अभिमान नहीं करना चाहिए। धन-सम्पत्ति का, ऐश्वर्य का, जाति का रूप का या वल का अथवा अन्य किसी भी वस्तु का अहकार करना अपने आपको नीचा दिखाने की तैयारी करना है। देखो, पोतनपुर-नरेश ने अपनी प्रभुता का अभिमान किया और जाति का भी अभिमान किया तो वणिक् जाति मे उत्पन्न भविष्यदत्त ने उसके अभिमान को चूर्ण कर दिया। उसे वदी वनना पड़ा और तिरस्कृत होना पड़ा।

भविष्यदत्त अपने पूर्वजन्म के पुण्य का फल भोग रहा है। जो दूसरों को सुख पहुँचा कर आया होगा, वह अनायास ही सुख भोगेगा। पुण्य का प्रभाव ही इतना जबर्दस्त होता है कि पुण्यात्मा जिधर कदम रखता है, उधर ही उसे सुख और सम्पत्ति यश और वैभव प्राप्त होता है। भविष्यदत्त को देखो। उसने जहाँ पाँव रक्खा, अपूर्व और अकल्पित सफलता पाई।

भविष्यदत्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी हवेली गया। माता-पिता ने अपूर्व आनन्द का अनुभव किया। उनकी सवा हाथ छाती फूल गई। तिलकसुन्दरी के भी हर्ष की सीमा न रही। उसने परम प्रीति प्रदर्शित करके भविष्य का स्वागत किया। अब भविष्यदत्त आनन्द के साथ अपने घर रहने लगा।

एक दिन राजा ने भविष्यदत्त को अपने पास बुलाकर विवाह के सम्वन्ध मे विचार किया। विवाह की तिथि निश्चित हो गई। दोनो ओर बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ होने लगी। राजा के

यहा किस चीज की कमी थी। ऐसा पुण्यशाली और सूरवीर दाम द पाकर उसको वहुत आनन्द और सन्तोष था। अतः राजा ने अपनी कन्या के विवाह की जी खोल कर तैयारियाँ की। राज-प्रसाद के सामने, विशाल चौगान मे एक सुन्दर मण्डप बनवाया। उसमे जगह-जगह हीरे और पन्ने लगवाये। अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी का काम करवाया। मण्डप की रचना ऐसी अद्भुत हुई कि दर्शक अवाक् रह गये। ऐसा मालूम पडता था कि यह मण्डप नही, स्वर्गलोक का कोई सुसज्जित प्रदेश है।

उधर भविष्यदत्त के घर भी असीम वैभव था। उसी वैभव के अनुरूप वहां भी तैयारिया हुई। विवाह की तिथि आ गई। समय पर पाणिग्रहण की विधि सम्पन्न हुई। राजा ने हथलेवे मे अपना आधा राज्य भविष्यदत्त को दे दिया और राजा बना दिया। साथ ही छत्र, चँवर, सुवर्ण निर्मित सिहासन, हाथी, घोडे आदि-आदि वैभव भी प्रदान किया। राजा ने सब वरातियो का भी समुचित सत्कार किया।

नववधू को साथ लेकर भविष्यदत्त अपने घर पहुँचा। वधू ने कमलश्री के चरणो में प्रणाम किया। कमलश्री बहुत प्रसन्न हुई! राजा की लड़की उसकी पुत्रवधु बन कर आई और चरणो मे गिरी, यह देख कर कमलश्री को कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह तो अनुमान करने की ही चीज है। कमलश्री का आशीर्वाद लेकर वह तिलकसुन्दरी के पास पहुँची। उसको प्रमाण किया। यद्यपि तिलकसुन्दरी हृदय से उदार और विवेक-शालिनी थी, फिर भी नारी-स्वभाव की सहज प्रेरणा ने उसे कुछ उदास बना दिया।

सोत के आगमन से उसे प्रसन्नता नही हुई। परन्तु भविष्यदत्त ने आकर उसकी खिन्नता दूर कर दी। थोड़ी-सी देर के लिए तिलका के दिल मे जो असहिष्णुता का भाव उदित हुआ था, वह दूर हो गया। फिर तो दोनों में गाढ़ा प्रेम हो गया। समस्त परिवार आनन्द मे रहने लगा।

एक दिन तिलकसुन्दरी और सुमति दोनो बैठी-बैठी प्रेम-पूर्ण वार्त्तालाप कर रही थीं। वार्त्तालाप के सिलसिले में तिलक-सुन्दरी ने सुमति से कहा—अपन ने पहले पुण्य उपार्जन किया, इसी के फलस्वरूप आज हजारो आदमी अपना हुक्म वजा रहे हैं। पर कौन जानता है कि यह सुख सदैव इसी भांति बना रहेगा ? हम अपने पति पर अधिकार करती हैं, मगर पुरुषों का क्या भरोसा है ? हम समझती हैं कि हमे सब प्रकार का आनन्द और मौज-मजा है, परन्तु किसे पता है कि यह सब कितने दिनो का है ? बुरा मत मानना बहिन, तुम्हारे ऊपर नही कहती हूँ, सिर्फ उदाहरण देती हूँ कि पतिदेव जैसे मेरे रहते तुम्हे ले आये उसी प्रकार हम दोनो के रहते तीसरी को ले आ सकते हैं ! पति-देव कब और किस प्रकार चमकेंगे, कौन जानता है ?

तिलका की बात सुनकर सुमति ने कहा—बहिन आपकी बात सत्य है। स्त्री को चार प्रकार का दु.ख और चार ही प्रकार का सुख होता है। पहला सुख सुहाग का, दूसरा पति की प्रस-न्नता का, तीसरा सुख सौत न होना और चौथा सुख पुत्र का होना। इनमे से किसी का न होना दु.ख है।

यह बात हो ही रही थी कि अकस्मात् भविष्यदत्त वहां आ

पहुँचा। दोनो ने उठ कर अपने पति का सन्मान किया। मगर दोनो के मुख पर कुछ उदासी सी झलक रही थी। भविष्यदत्त ने उस उदासी का कारण पूछा। तब सुमतिकुमारी ने कहा—आप यह बताइये कि बहिन तिलकसुन्दरी मे क्या दोष है?

भविष्यदत्त—कोई दोष नही।

सुमति तो फिर आपने मुझ से विवाह क्यो किया? इसी प्रकार अगर आपने फिर तीसरा विवाह किया तो?

भविष्य० प्रिये! तुम दोनों निश्चिन्त रहो। मैं जिन-शासन की साक्षी से कहता हूँ कि अब विवाह करने का न तो विचार है और न करूँगा ही।

भविष्यदत्त का यह सकल्प सुन कर दोनो का मन हरा हो गया। जैसे सावन न महीने मे वर्षा होने पर प्रकृति खिल उठती है, उसी प्रकार दोनो का चेहरा खिल उठा!

भाइयो! ससार मे पति और पत्नी का सम्बन्ध घनिष्ठतम समझा जाता है। इसी कारण सस्कृत मे दोनों के लिए एक ही शब्द 'दम्पती' का प्रयोग किया गया है। वास्तव मे पति और पत्नी का सुख एव दुःख दोनो पर निर्भर रहता है। किस नारी का पति उसे सुखदायी नही होता, उसका जीवन भारभूत हो जाता है। भोजन, वस्त्र, आमोद-प्रमोद आदि के समस्त साधन विद्यमान होने पर भी पति-सुख के अभाव मे सभी सुख, दुःख रूप बन जाते है। इसके विपरीत आनन्द का कोई भी साधन न होने पर भी जिस नारी को पति सुख प्राप्त होता है, वह अपने

को सौभाग्यशालिनी समझती है। बात बहुत अशो में सत्य भी है। रामचन्द्रजी को वन मे जाने की आवश्यकता हुई थी, परन्तु सीताजी से न कोई नाराज था, न उनका वन मे जाना आवश्यक था। सभी ने, स्वय रामचन्द्रजी ने भी समझाया था कि तुम अयोध्या मे ही रहो। अयोध्या मे सब प्रकार के सुख थे। राजकीय वैभव उनके चरणो मे लोटता था। एक दासी को बुलाने पर दस दासिया हाथ जोडकर आज्ञापालन के लिए दौड़ी आती थी। सारे परिवार का स्नेह उन्हे प्राप्त था। यह सब त्याग कर सीताजी ने रामचन्द्रजी के साथ वन में जाना क्यों पसन्द किया ? अगर तराजू के एक पलडे पर पतिसुख रख दिया जाय और दूसरे पलडे पर दूसरे समस्त राजकीय सुख रख दिये जाएँ तो सच्ची पतिव्रता नारी के लिए पतिसुख का पलडा भारी प्रतीत होगा। दोनो मे से एक की पसन्दगी करने को कहा जाय तो वह पतिसुख को ही पसन्द करेगी। साराश यह है कि नारी का समस्त सुख पति पर निर्भर है।

इसी प्रकार पति का सुख पत्नी पर निर्भर है। पति कितना ही प्रतिष्ठित, धनाढ्य और प्रभावशाली क्यो न हो, घर मे पत्नी अगर कर्कशा है, कलहकारिणी है और रात दिन चख चख करती रहती है तो पुरुष को किंचित भी शान्ति नही मिलती। इसके विपरीत बडे से बड़ा सकट आने पर भी पत्नी की ओर से अगर आश्वासन मिलता है, स्नेहपूर्ण तसल्ली मिलती है तो पति को वह बडा सकट भी तुच्छ प्रतीत होने लगता है। पति, पत्नी का प्राण है तो पत्नी, पति की शक्ति है। प्राण के अभाव मे शक्ति नही रहती तो शक्ति के अभाव मे प्राण भी कितनी देर टिक सकता है?

अतएव जिन्हे साधु नही बनना है और गृहस्थी मे रह कर ही अपने धर्म की साधना करनी है, उन पति-पत्नियो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे एक दूसरे के साथ सहयोग करें, परस्पर अनुकूल होकर चलें एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक रहे, दोनो अपने-अपने धर्म का पालन करे और एक दूसरे के धर्म पालन में बाधक नही बल्कि साधक बने।

बहुत-से लोगो ने समझ रक्खा है कि गृहस्थ जीवन तो भ्रष्ट होने के लिए ही है और नरक का द्वार ही है। किन्तु यह विचार एकान्त सत्य नही है। गृहस्थ जीवन स्वर्ग का द्वार भी है और नरक का द्वार भी है। जो जैसा बनाना चाहे, उसके लिए वह वैसा ही बन सकता है। आत्महित की सर्वथा उपेक्षा करके, निरन्तर विषय भोग मे ही डूबे रहने वाले लोग गृहस्थ जीवन को अभिशाप बना लेते हैं जब कि अपने कर्त्तव्य एव धर्म को पालने वाले उसे बडा वरदान भी बना लेते है।

आशय यह है कि पति और पत्नी को अपने अपने कर्त्तव्य का भली भाति पालन करना ही उचित है। पति परस्त्री त्यागी होकर पत्नी के प्रति वफादर बन सकता है और पत्नी पर पुरुष त्यागिनी होकर पति के प्रति प्रामाणिक हो सकती है।

भविष्यदत्त और तिलकसुन्दरी एव सुमति ऐसे ही आदर्श पति-पत्नी है। उन्होने एक दूसरे के धर्मपालन मे सहायता पहुँचाई। मन मे कोई बात आई तो मन मे ही नही रहने दिया, परन्तु उसे निष्कपट भाव से स्पष्ट रूप से कह दिया। समस्त परिवार आनन्द और सन्तोष के साथ रहने लगा।

कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए । एक दिन भविष्यदत्त सिहासन पर विराजमान था । उसकी दाहिनी ओर तिलकसुन्दरी और बायी ओर सुमति बैठी थी । इतने मे माता कमलश्री आई । माता को आती देख सब ने उठकर उनका स्वागत किया । भविष्य ने पूछा–माताजी, कहिए क्या आज्ञा है ?

माता कमलश्री को अपने प्रियपुत्र भविष्यदत्त का राजसी वैभव देखकर असीम प्रसन्नता हुई । उसकी छाती फूल गई ! भविष्यदत्त जैसे विनीत और धर्मनिष्ठ पुत्र की यह कीर्ति, प्रतिष्ठा और समृद्धि देखकर माता को कितना आनन्द हुआ, यह बतलाने की शब्दो मे शक्ति नही है । कमलश्री ने कहा –बेटा भविष्य! तेरी सफलताएँ देख कर मेरा अन्त करण अत्यन्त प्रसन्न है । उस दिन राजसभा मे तू ने जो भी प्रतिज्ञाएँ की थी, वे सब पूरी हो गई है । तू ने बडे-बडे प्रचण्ड शक्तिशाली छत्रधारियो को भी जीत लिया है और बन्दी बना लिया है । जन्म तो तेरा वैश्यकुल मे हुआ, किन्तु तू किसी भी शूरवीर क्षत्रिय से कम नही है । बेटा! मेरा यह कहना है कि वीरता की शोभा क्षमा से है । तू ने अनेक राजाओं और सरदारो को पराजित करके बन्दी बना रक्खा है, परन्तु उनकी माताएँ और पत्नियां उनके वियोग मे बिलख रही होगी । पति और पुत्र का बिछोह स्त्रियो को कितनी मार्मिक पीडा पहुँचाता है, यह बात मैं जानती हूँ । मैं दुर्भाग्य से दोनो के बिछोह की वेदना को भुगत चुकी हूँ । उन बेचारियो ने कोई अपराध नही किया है । फिर भी सब से अधिक दुःख उन्ही को भोगना पड रहा है । इसलिए तू उन सब को अब मुक्त कर दे । यही मेरी इच्छा है ।

भविष्यदत्त ने कहा—माताजी, आपकी दयालुता आपके योग्य ही है। मैंने भी आपसे दया का पाठ पढा है। मैं महाराज से तथा सरदारो से विचार-विनिमय करके शीघ्र ही इस सम्बन्ध मे उचित कार्रवाई करूँगा। जो योद्धा बन्दी बनाये गये है, उनके प्रति मेरे हृदय मे कोई कटुता नही है, द्वेष नही है। केवल कर्त्तव्य पालन और नीति की रक्षा करने के लिए ही ऐसा करना पडा। अगर उनसे युद्ध न किया जाता तो कितनी बडी अनीति होती, यह सहज ही समझा जा सकता है। अब इस सम्बन्ध मे जल्दी ही निर्णय करके मैं आपको निवेदन करूँगा।

इसके पश्चात् भविष्यदत्त दरबार में आया। उसने महाराज, धनसार सेठ तथा सरदारो को बुलाया और बन्दी बनाये हुए योद्धाओ के छुटकारे के सम्बन्ध मे विचार किया। एक सरदार ने कहा—महाराज! छोड़ देना तो आसान है, पर शत्रु बडा प्रबल है। ऐसे प्रबल शक्ति वाले शत्रु को हाथ से जाने देना ठीक नही मालूम होता। दूसरे ने कहा अभी उन्हे बन्दी बनाये एक सप्ताह भी नही हुआ है। अपनी अनीति का थोड़ा फल तो भुगत लेने दीजिए। फिर छोड़ दीजिएगा। जल्दी क्या है? किसी ने कहा—छोड़ देने मे अब क्या हानि है? परन्तु पहले उनसे प्रतिज्ञा करवा लेनी चाहिए कि भविष्य मे वे हस्तिनापुर की तरफ आँख उठा कर भी न देखेंगे!

सरदारो के विचार सुन हस्तिनापुर-नरेश ने कहा-यह ठीक है। अगर वे लोग ऐसी प्रतिज्ञा करने को तैयार हो तो छुटकारा देने मे कोई हानि नही।

भविष्यदत्त बोला-यहां उपस्थित सभी महानुभाव हस्तिनापुर के परम हितैषी हैं और अनुभवी हैं। मैं आप सब की सम्मति का सन्मान करता हूँ। बन्दियों से प्रतिज्ञा करवा लेने मे कोई हानि नही है, यद्यपि हमे इस बात की परवाह नही होनी चाहिए कि आगे चलकर वे क्या करेंगे। अगर उन्होने फिर हमारे विरुद्ध कदम उठाया तो हस्तिनापुर उन्हे सबक सिखाने के लिए सदैव तैयार है। जैसे उन्होने अपनी करतूत का फल इस बार भोगा है, उसी प्रकार फिर भी भोगना पडेगा।

आखिर निश्चत हुआ कि बन्दियो को छोड दिया जाय। तदनुसार प्रमुख बन्दी दरबार मे बुलवाये गये। सबका यथायोग्य स्वागत किया गया। फिर भविष्यदत्त ने उनसे कहा-व्यर्थ ही हमारे और आपके बीच मनमुटाव हुआ, लडाई हुई और आपको प्रतिष्ठा को कलंक लगा। आप लोगो के प्रति हमारे हृदय मे कोई दुष्ट भावना नही है आप हमारे मित्र हैं। राजा के पास जो शक्ति होती है वह अन्याय-अत्याचार का निवारण करके प्रजा के कल्याण मे लगनी चाहिए, न कि अन्याय करने मे और प्रजा का कष्ट बढ़ाने मे। हम सब अपने-अपने कर्त्तव्य का प्रामाणिकतापूर्वक पालन करें तो सर्वत्र आनन्द छाया रहे। शक्ति रहे। धर्म का पालन हो।

पोतनपुर नरेश ने कहा-आपका कथन यथार्थ है। वास्तव मे मैंने उत्तेजना के वश होकर और शक्ति के मद मे उन्मत्त होकर अनीति करनी चाही। अब कभी ऐसा न होगा। आप हमे जीवनदान देंगे तो हम सदैव आपके मित्र बन कर रहेंगे।

भविष्यदत्त—ठीक है। अब आप सब मुक्त है, स्वतन्त्र है। हमारा आतिथ्य स्वीकार करके आप जब लौटना चाहें, अपने देश लौट सकते है।

इसके बाद सब बन्दियो को राजा और सरदारो की हैसियत से दावत दी गई। यथोचित वस्त्र आदि से भी उनका सत्कार किया गया। इस अवसर पर भी भविष्यदत्त ने अपनी सद्भावनाएं प्रकट की। कहा—आशा है आप लोग पिछली घटनाओ को बिलकुल भूल जाएंगे और हमे अपना मित्र समझ कर स्नेह बनाए रक्खेगे। पोतनपुर-नरेश ने उत्तर मे कहा—मैं सब की ओर से विश्वास दिलाता हूं कि हम आपको अपने लिए आधारभूत मानते है। आपकी ओर से पूर्ण स्वाधीनता मिल जाने पर भी हम स्वेच्छा से आपके अधीन हो कर रहेगे। आपने हमारी लाज रख ली है, हमे प्रेम से अपनाया है। इसके लिए हम आपके कृतज्ञ रहेगे।

इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के प्रति सद्भावनाएं व्यक्त करने के बाद पोतनपुर-नरेश ने अपने देश लौट जाने की आज्ञा माँगी। यथासमय सब विदा हुए।

भविष्यदत्त सुखपूर्वक राज्य का पालन करता हुआ अपना समय व्यतीत करने लगा। समय पाकर तिलकसुन्दरी सगर्भा हुई। खूब खुशी मनाई गई। तिलकसुन्दरी का दोहला हुआ। वह कभी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करके उद्यान मे घूमने जाती है और कभी भविष्यदत्त के साथ मनोविनोद के लिए तिलकपुर पाटन चली जाती है। वहाँ दानव मिलता है। वह प्रेम प्रदर्शित करता

हुआ कहता हैं—बेटी, सुखी रहो, सौभाग्यशालिनी रहो । भंडार भरे है, जो चाहिए सो ले लो ।

भाइयों ! जिन्होने पुण्य का उपार्जन किया है, उन्हे सीधी जोगवाई मिलती है । सब प्रकार की सुख-सामग्री उनको खोजती आती है । जिसने पुण्य का उपार्जन नही किया है; उसे कुछ नही मिलता ।

समय पूर्ण होने पर तिलकसुन्दरी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया । सर्वत्र हर्ष का प्रसार हो गया । मगलगीत गाये गये । कमलश्री के सुख का पार न रहा । बारहवे दिन अशुचि-निवारण की रीति सम्पन्न की गई । राजकुमार का नाम 'महेन्द्रकुमार' रक्खा गया । लाखों रुपया परोपकार और पुण्य मे लगाये गये । कालान्तर मे तिलकसुन्दरी ने चार पुत्रों को और जन्म दिया । सुमति के भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसका नाम 'धरणेन्द्र' रक्खा गया । दो कन्याए भी उत्पन्न हुई । इस प्रकार परिवार का विस्तार हो गया । कमलश्री के सुख-सन्तोष का ठिकाना नही । पोतों और पोतियो मे वह खोई-सी रहती है । फिर भी नियमित धर्मध्यान करने से नही चूकती ।

८-११-४८



सुख का समीचीन पथ



स्तुति :-

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन् मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ ।
निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! जब आपके मुख रूपी चन्द्रमा से ही जगत् के अन्धकार का विनाश हो गया है तो फिर रात्रि मे चन्द्रमा की और

दिन मे सूर्य की आवश्यकता ही क्या है ? संसार मे जब धान पक चुका हो तो जल से भरे बादलो का क्या प्रयोजन है ?

तात्पर्य यह है कि भगवान् ऋषभदेवजी का मुख चन्द्र और सूर्य की अपेक्षा भी अधिक प्रकाशमय है। वह जीवो को बाह्य और आन्तरिक प्रकाश देता है । भगवान् ने पहले जो अपूर्व पुण्य उपार्जन किया है, उसी का यह परिणाम है। ऐसे दिव्य और अनुपम प्रकाश से युक्त भगवान् ऋषभदेवजी हैं उन्ही को हमारा वार-वार नमस्कार हो ।

भाइयो ! भगवान् के गुणो का पार नही है और जो गुण भगवान् मे है वही इस आत्मा मे भी है । यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि परमात्मा और आत्मा मूलत सजातीय हैं, विजातीय नही है। अतएव दोनो का मूल स्वरूप एक-सा ही है। परमात्मा मे अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति आदि जो भी गुण माने गये हैं, वह-सभी इस आत्मा मे भी हैं। आत्मा मे यदि वे गुण शक्ति रूप मे भी विद्यमान न होते तो परमात्मा मे कहाँ से आ जाते ? गुण द्रव्य की भाति नित्य होते हैं। जैसे द्रव्य नित्य और उसके पर्याय अनित्य होते हैं, इसी प्रकार गुण नित्य और गुणों के पर्याय अनित्य होते है। इस कथन का आशय यह हुआ कि किसी भी द्रव्य मे कोई भी नया गुण उत्पन्न नही हो सकता और न पहले से विद्यमान किसी गुण का नाश ही हो सकता है । गुण जिस द्रव्य मे जितने हैं, उतने ही रहते हैं। अलवत्ता, उनके पर्यायो मे परिवर्त्तन होता रहता है । आत्मा जब तपस्या करके क्षीणकषाय वन जाता है तो उसके ज्ञानगुण के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि

पर्याय पलट कर केवलज्ञान रूप पर्याय बन जाते है। ज्ञानगुण तो ज्यो का त्यो रहता है।

अब प्रश्न किया जा सकता है कि अगर गुण नवीन उत्पन्न नही होते तो फिर आत्मा और परमात्मा मे क्या अन्तर है? आत्मा मे जितने गुण हैं, परमात्मा मे भी अगर उतने और वही गुण हैं तो दोनों मे भेद क्यो है?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि आत्मा और परमात्मा मे वास्तव मे गुणो का कोई अन्तर नही है। जो लोग यह समझते हैं कि आत्मा जब परमात्मा बनता है तो उसमे नवीन-अभूतपूर्व गुण उत्पन्न हो जाते है और वह आत्मा से भिन्नजातीय बन जाता है, वे भ्रम मे हैं। फिर भी दोनो मे अन्तर है। वह अन्तर गुणों का नही, गुणो के विकास का है। आत्मा मे जो कुछ विकृत रूप मे हैं, आंशिक रूप मे है, वही गुण परमात्मा मे अविकृत रूप मे प्रकट हो जाते है। शुद्ध स्वरूप मे आत्मिक गुणो का प्रकट हो जाना ही परमात्म दशा प्राप्त होना कहलाता है।

आत्मा के गुणो मे जो विकास है वह कर्मो के कारण है। जौहरी की दुकान मे रक्खा हुआ हीरा अपनी असली आभा से दमकता है और खान मे पडा हुआ या खान से निकाला हुआ किन्तु साफ नही किया हुआ हीरा मलीन होता है। जब वह मलीन है, तब भी उसमे जौहरी की दुकान के हीरे के समान ही चमक दमक है, मगर मैल के कारण वह आच्छादित है। चमक-दमक उसमे मूल से ही न होती तो खराद पर चढाने से कहा से आ जाती? साधारण पत्थर की कितनी ही घिसाई की जाय, उसमे

हीरे की चमक नहीं आ सकती। इसका एक मात्र कारण यही है कि उसमे मूलत. वह चमक है ही नही तो प्रकट कहां से होगी ? इसके विरुद्ध हीरा घिसने से चमकने लगता है।

यही बात आत्मा के सम्बन्ध मे है। आत्मा खान मे दबा हुआ हीरा है और परमात्मा जौहरी की दुकान का चमकता हुआ हीरा है। दोनो समान आभा से सम्पन्न हैं। परन्तु एक तपस्या की खराद पर चढ़ कर अपने असली रूप मे आ गया है और दूसरा अर्थात् आत्मा अभी कर्मों के मैल से लिप्त है। यही दोनों मे अन्तर है।

आत्मा मे मलीनता अनादि काल से है और वह कर्म वर्गणाओ से उत्पन्न होती रहती है। प्रत्येक कर्म कभी आत्मा के साथ बद्ध होता है और अपनी काल मर्यादा समाप्त होने पर अलग हो जाता है, किन्तु कर्मों का प्रवाह बराबर जारी रहता है। इसी कारण अशुद्धता बनी रहती है।

यह कर्म वर्गणाएं किस प्रकार की हैं। जैसे वस्त्र शरीर को ढँक देता है, वैसे कर्म आत्मा को नही ढँकते मगर जैसे दूध में पानी मिल जाता है और दोनो एक मेक-से हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्म प्रदेश और कर्म परमाणु मिल कर एक मेक-से हो रहे हैं।

अब कहा जा सकता है कि आत्मा के प्रदेश और कर्म-वर्गणा के परमाणु अगर आपस मे इस प्रकार मिल गये है तो उन्हे अलग-अलग किस प्रकार किया जा सकता है ? इसका

उत्तर यह है कि जैसे अग्नि के निमित्त से पानी जल जाता है और दूध निखालिस हो जाता है, उसी प्रकार तपस्या को तीव्र अग्नि जब प्रज्वलित होती है तो कर्म सब भस्म हो जाते है और आत्मा शुद्ध हो जाता है।

श्रीठाणांगसूत्र के पहले अध्ययन के पहले उद्देशक के पहले ही वाक्य मे कहा गया है—'एगे आया।' अर्थात् आत्मा एक है। अगर आत्मा और परमात्मा मे मौलिक अन्तर होता तो ऐसा नही कहा जा सकता था।

कुछ लोगो का दृष्टिकोण ऐसा है कि विभिन्न शरीरो में स्थित आत्मा की सत्ता अलग-अलग नही है। मूलतः समस्त आत्माएं एक ही हैं। परन्तु बात ऐसी नही है। जब एक जीव सुखी होता है तो दूसरा दुखी होता है। एक बीमार होता है और दूसरा नीरोग होता है। इत्यादि कारणो से आत्मा को सर्वथा एक नही माना जा सकता, किन्तु एक-जातीय मानने मे कोई बाधा नही है। एक-जातीय मानने का मतलब यह है कि द्रव्यार्थिक नय, संग्रहनय से आत्मा एक है। मगर याद रखना चाहिए कि एक नय वस्तु के स्वरूप को पूरी तरह नही बतलाता है। नय अंश को ग्रहण करता है और एक नय से वस्तु का एक अंश अर्थात् अनन्त धर्मों मे से एक ही धर्म जाना जाता है। दूसरे नय से या व्यवहार नय से देखा जाय तो आत्मा अनन्त हैं। जैसे मारवाडी शब्द एक है और मारवाड के रहने वाले सभी उसमे आ जाते हैं किंतु व्यवहार से देखे तो बहुत है। गेहूँ के दाने बहुत है, परन्तु सब एक जातीय होने से गेहू धान्य एक मे ही गिना जाता है। इसी प्रकार सग्रहनय से आत्मा एक है किन्तु व्यवहार-नय से अनेक हैं।

सुख और दुःख की अनुभूति आत्मा को ही होती है, जड़ पदार्थ को नही। जो जड को सुख-दुख होना मानते हैं, वे स्वयं जड़-बुद्धि हैं।

एक मूर्ख आदमी घास खोदने गया। धूप पड रही थी। उसे प्यास लगी। कुदाली वही छोड़ कर वह पानी पीने चला गया। लौटकर आया तब तक धूप से कुदाली गर्म हो गई थी। वह कुदाली को लेकर वैद्यराज के पास पहुँचा। बोला—मेरी कुदाली को ज्वर चढ आया है। कृपा करके इसका ज्वर उतार दीजिए। वैद्यराज ने मन ही मन मुस्करा कर कहा—इसे तो भाई, १०८ डिग्री बुखार चढ़ा है। दो रुपये लगेंगे!

मूर्ख यह सब देखकर कहने लगा बुखार उतारने की तरकीब अब मैं समझ गया और पूरी तरह समझ गया! उसने सोचा-दो रुपये लगे सो लगे, मगर बुखार उतारने की तरकीब हाथ लग गई!

थोडे दिनो बाद उसकी माता को बुखार आ गया। मूर्ख घर मे नही था। जब वह लौट कर घर आया तो उसकी स्त्री ने कहा—आज बहुत देर से आये! तुम्हारी माता को तो जोर से बुखार चढ़ा है!

मूर्ख बोला—कोई चिन्ता नहीं। बुखार तो मैं चुटकियो में उतार सकता हूं। दो रुपया कोई मुफ्त मे थोडे ही दिये है!

मूर्ख दूसरे दिन बुढिया को कुए पर ले गया और रस्सी से बाँध कर उसे कुए मे लटका दी। ऐसा करने से बुढिया को दोहरा

निमोनिया हो गया और वह मर गई। जब उसे कुंए से निकाला गया तो फिर क्या था ? काम तमाम हो चुका था !

भाइयो ! मूर्ख लोग कभी-कभी गहरी हानि पहुँचाते हैं। वे भलाई करने की इच्छा रखते हुए भी मूर्खता के वश होकर बुराई कर बैठते है। इसी कारण लोक मे उक्ति प्रसिद्ध है कि नादान दोस्त की अपेक्षा दाना दुश्मन भला होता है ! दुश्मन से मनुष्य सावचेत रह सकता है, मगर दोस्त से सावचेत रहना कठिन है !

तात्पर्य यह है कि जड़ को सुख-दु.ख नही होता। उसे बुखार भी नही चढता। बुखार जीव को ही चढता है। मगर जीव को बुखार चढता हो तो मोक्ष मे गये हुए आत्माओ को भी चढना चाहिए। किन्तु उन्हे भी नही चढता है। इसका कारण यही है कि क्या बुखार और क्या दूसरी बीमारिया, तभी तक हैं, जब तक आत्मा कर्मों के बन्धन मे है। कर्मों की बदौलत ही सब झगड़े हैं। कर्म दूर हो जाते हैं तो किसी भी प्रकार का झगडा नही रहता, किसी प्रकार की उपाधि नही रहती, किसी भी प्रकार का दुःख नही रहता।

कपडों को साबुन से क्यो धोया जाता है ? इसीलिए कि इनका मैल दूर हो जाय। इसी प्रकार जीव को कर्म रूपी मैल दूर करने के लिए तपस्या करनी पडती है और स्वेच्छाकृत दुःख भी सहन करना पडता है। तपस्या के साबुन से कर्म-मैल जब दूर हो जाता है तो आत्मा स्वच्छ वस्त्र की भाति निर्मल हो जाता है।

तो ससारी जीव को जितना भी सुख या दुःख होता है, सब कर्मों के सबध से ही होता है। कर्मों का काम बडा जबर्दस्त है। कर्मों को बाँधने के लिए कोई खास जगह निश्चित नही है। जीव जब कभी और जहाँ कही रहता है, वही कर्म उपार्जन करता रहता है। धान खेतो मे उपजता है, फल वृक्षो मे ही लगते हैं, मगर कर्मो के लिए ऐसी कोई जगह निश्चित नही है। जीव सर्वत्र और सर्वदा अनन्तानन्त कर्म-परमाणुओ को बाँधता ही रहता है। इन्ही कर्मों की विभिन्नता के कारण ससारी जीवो मे विभिन्नता दिखाई देती है। अतएव जीवो की विभिन्नता को देख कर कर्मों का अनुमान होता है, जैसे नदी–नालो में भरा पानी देख कर वर्षा का अनुमान किया जाता है।

कई लोगों को आत्मा के पुनर्जन्म मे सन्देह होता है। वे समझते है कि न मालूम आत्मा मृत्यु के पश्चात् फिर जन्म धारण करेगा अथवा नही, और जन्म से पहले मौजूद था या नही ? उनको कर्म-फल की विचित्रता देख कर आत्मा की निन्यता को समझना चाहिए। कहा जा सकता है कि जीव जो भी शुभ या अशुभ कर्म भोगते हैं, वे पूर्व जन्म के ही हैं, ऐसा क्यो माना जाय ? इसी जन्म मे किये हुए कार्यों का फल जीव इस जन्म मे भोगते है, ऐसा मानने मे क्या बाधा है ? इस सबध मे शास्त्रो का कथन है कि जीव पूर्व जन्म के ही कर्मो का फल इस जन्म मे भोगते हैं, ऐसा कोई नियम नही है। पूर्व जन्म के कर्मो के फल भी इस जन्म मे भोगते है और इसी जन्म मे किये कर्मो का फल भी भोगते हैं। मगर अनेक घटनाएँ हमारे समक्ष ऐसी घटती है, जो इस जन्म के कर्मों का फल नही कही जा सकती। उन्हे पूर्व कर्मो का फल माने बिना कोई चारा नही है। कहा है—

नवजात शिशु अंधा रोगी, जब तडफ-तड़फ मर जाता है।
यदि पुनर्जन्म नही मानो तो, यह कौन कृत्यफल पाता है ?

एक शिशु अभी-अभी उत्पन्न हुआ है, किन्तु अधा है, दूसरा रोगी है और तडफ-तड़फ कर उसी समय मर जाता है । तीसरा सकुशल सानन्द जीवित रहता है । शिशुओं मे इतना भेद क्यो है ? क्या यह शिशु अपने इसी जन्म के कर्मो का फल भुगत रहे हैं ? नही, मानना पड़ेगा कि पूर्वजन्म मे उन्होने जैसे कर्म उपार्जन किये थे, उन्ही का फल इस जन्म मे वे भोग रहे है । पूर्वजन्म के कर्मो का फल माने विना जन्मान्ध और जन्मरोगी होने की संगति नही वठ सकती । अतएव इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का एकान्त निश्चय नही किया जा सकता ।

जो लोग आत्मा को पुनर्जन्म धारण करने वाला नही मानते, उन्हे बारीक निगाह से सोचना चाहिए:—

गौ के विपिन मे बच्चा होता है वह स्वयं खड़ा हो जाता है ।
फिर स्वयं दूध पीने लगता यह कौन उसे सिखलाता है ? ॥

गाय जंगल मे चरने जाती है और वही उसके बच्चा हो जाता है । वह थोड़ी सी देर मे खडा हो जाता है और अपनी माता का दूध पीने लगता है । तो कहो, किसने उसे बतलाया कि यह तेरी माता है, इसके स्तन यहां है, स्तनो मे दूध है और स्तनो मे मुँह लगा कर चूसने से दूध निकल आयगा और दूध पीने से तेरे जीवन की रक्षा होगी ? यह सब बाते सिखलाने वाला कौन वहा होता है ? प्रत्येक बालक को यह सारी बातें कौन समझता

है ? यह सब देख कर मानना ही पड़ता है कि पूर्व जन्म के अभ्यास से ही यह क्रियाएँ होती हैं। और भी कहा है:—

माता शिशु के मुँह में स्तन दे, नहि पीने की क्रिया बताती है।
वह पूर्व जन्म के अभ्यास से ही, अनायास आ जाती है ॥

मातायेँ अपने बच्चे के मुँह में स्तन तो दे देती है, मगर चबर-चबर करके चूसना दूध खीचना उन बालको को कौन सिखलाता है ? अगर कोई समझाने की चेष्टा करे भी तो क्या बालक मे उस समय इतनी योग्यता होती है कि वह समझ सके ? सच बात तो यह है कि बालक पूर्व जन्म के सस्कारो से प्रेरित होकर स्वय ही यह क्रिया करता है । पहले जन्म के अभ्यास से अनायास ही उसे ऐसा करना आ जाता है। अतएव आत्मा का पूर्व जन्म और पूर्व जन्म के सस्कारो का अगले जन्म में आना अवश्य मानना चाहिए। जो लोग इन अनुभव सिद्ध युक्तियो को भी हठ पूर्वक स्वीकार नही करते है, उनके सामने प्रश्न किया जाता है:—

तू स्थित भोगे किस कारण से, कल क्या होगा क्यो नही जाने ?
जिस कारण वाछित फल न मिले, घटना का कारण पहिचाने ॥

यह बतलाओ कि तुम लखपति या करोडपति बने हो, सो किस कारण से बने हो ? अगर तुम्हारा यह खयाल हो कि हम अपनी मेहनत से बने हैं तो तुम्हारी हवेली मे काम करने वाले नौकर-चाकर ज्यादा मेहनत करते है या तुम ज्यादा मेहनत

करते हो ? अगर नौकर-चाकर ज्यादा मेहनत करते हैं तो वे कंगाल क्यो रह गये ? वे तुमसे भी ज्यादा धनवान् क्यो नही बन सके ? यदि अधिक मेहनत से अधिक धनवान् और कम मेहनत से कम धनवान् बनते हैं तो मसनद के सहारे पडे रहने वाले श्रीमत क्यो हैं ?

इसके अतिरिक्त देखा जाता है कि एक साथ दो किसान खेती करते हैं या दो व्यापारी व्यापार करते हैं, किन्तु समान परिश्रम करने पर भी दोनो को एक-सा फल प्राप्त नही होता। इसका कारण क्या है ? दो चूहे बिल में से निकले और आहार प्राप्त करने के लिए उद्यम करने लगे। एक ने हलवाई की छाब काटी और दूसरे ने साप की पिटारी काटी। दोनो ने समान रूप से उद्योग किया। मगर फल भी क्या दोनो को समान मिला ? नही। जिसने हलवाई की छाब काटी उसे मनमानी मिठाई खाने को मिली। जिसने साँप की पिटारी काटी उसे भूखा साँप गटक गया ! यह भिन्नता किस कारण से हुई ? पूर्वसचित कर्म के अतिरिक्त और क्या कारण यहा बतलाया जा सकता है ? ऐसी-ऐसी घटनाए देखकर समझना चाहिए कि पुनर्जन्म अवश्य होता है और पिछले जन्मो मे उपार्जित किये हुए कर्म अगले जन्मो मे फल प्रदान करते हैं।

अजब तमाशा जगत् का देखो नजर यह आ रहा।
कोई दुशाला कोई गुदड़ा ओढ कर है जा रहा ॥

भाइयो ! इस ससार का तमाशा बडा विचित्र है कोई तो बहुमूल्य दुशाला ओढ कर शान के साथ चलता है और कोई गुदड़ी ओढ कर ही किसी तरह अपना जीवन निभा रहा है।

दुशाला ओढने वाला ज्यादा मेहनत करता है और गुदड़ी ओढने वाला कम, यह कहना अपने आपको धोखे मे रखना है। मूल बात तो अपने अपने कर्मों का उदय है। कर्मों की विचित्रता के कारण ही जगत् मे यह विचित्रता दिखलाई पड़ती—

एक व्यक्ति के चिथड़े है फटे, एक ओढ़े शाल-दुशाला है।
एक चार चने का सवाल करे, एक के नित माल मसाला है।।

एक आदमी सुन्दर और सुसज्जित महल मे बैठकर बादाम का हलुवा खा रहा है और दूसरा द्वार-द्वार पर भटकता फिरता है। कहता है—बाबूजी, चार रोज का भूखा हूँ, चार दाने चने के मिल जाएँ! इस तुच्छ-सी याचना के बदले मे भी वह भिडकियाँ खाता है, अपमान सहन करता है और फिर निराश होकर चल देता है। यह सब अन्तर कहां से आया है? इसका प्रधान कारण पुण्य और पाप ही है। अपने किये कर्म ही रग दिखलाते हैं।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि यह भिन्नता सामाजिक व्यवस्था के दोष से उत्पन्न हुई है। हो सकता है कि इसमें एक सीमा तक सचाई हो, परन्तु सामाजिक व्यवस्था मे यथेष्ट सुधार कर लेने पर भी प्रत्येक जीवधारी या मनुष्य को सर्वथा समान अवस्था मे नही लाया जा सकता। जहां साम्यवादी व्यवस्था लागू की गई है, वहां भी भेदभाव मिट नही सका है। वहां अनेक प्रकार की भिन्नताएँ विद्यमान है और लाख प्रयत्न करके भी उनका समूल उन्मूलन नही किया जा सकता। अतएव कर्मफल की सत्ता को स्वीकार किये बिना कोई चारा नही है। तुलसीदासजी कहते हैं:-

कर्म प्रधान विश्व करि राखा,
जो जस करहि से तस फल चाखा ॥

सारा ससार कर्म-प्रधान है और जो जीव जैसे कर्म उपार्जन करता है उसे वैसा ही फल भुगतना पडता है। यह विधान अटल है और इसमे कदापि किसी प्रकार का परिवर्त्तन नही हो सकता। मगर अधिकाश लोग इस सचाई को समझते नही है। जो समझते है वे भी समय पर भूल जाते है। सभी लोग सुख चाहते है, समृद्धि चाहते हैं, सब प्रकार की सुविधाएं चाहते हैं, परन्तु कितने लोग है जो उसके लिए अपने कर्त्तव्य पर विचार करते हो ? लोग अच्छा फल चाहते है परन्तु अच्छे कर्त्तव्य करने से बचने की कोशिश करते हैं। दुःख उत्पन्न करने वाले कार्य करके सुख पाने की चेष्टा करना वैसा हो है जैसे नमक खाकर मुंह मीठा करने की इच्छा करना। ऐसे लोगों की इच्छाएं कभी पूर्ण नही हो सकती। जिसे सुखी होना है उसे सुख रूप फल देने वाले कार्य करने होगे।

इस विवेचन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि सुख और दु.ख किसी दूसरे के दिये नही होते। आत्मा स्वय ही अपने सुख-दुःख का निर्माण करता है। आगम मे कहा है . —

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ॥

जैन धर्म आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता की इस प्रकार उद्घोषणा करता है। तुम्हारे सुख और दुःख किसी दूसरे के हाथ मे नही है। तुम चाहो तो अपने लिए सुख का निर्माण कर लो और

चाहो तो दुःख का निर्माण कर लो। अपना भविष्य जैसा चाहो वैसा बना लो। दूसरी कोई भी शक्ति तुम्हारे पथ में रोड़ा नहीं अटका सकती। तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा के अनुसार चलोगे, अशुभ कार्यों से बच कर शुभ कार्यों मे प्रवृत्त होओगे तो सुखी बन सकोगे। अतएव कर्म करते समय विवेक का परित्याग मत करो। निश्चय समझो कि तुम जो भी क्रिया आज कर रहे हो वह तुम्हारे भविष्य का निर्माण कर रही है। ऐसा समझ कर जरा सावधानी से काम लो। विवेक और दीर्घदृष्टि का उपयोग करो। एकदम वर्त्तमान को ही मत देखो। भविष्य का भी ख्याल करो। तुम्हारे वर्त्तमान के कार्य भविष्य मे कर्म बन कर तुम्हारे सामने आएँगे।

मनुष्य-मनुष्य मे जो भी अन्तर नजर आता है, वह सब कर्मों की बदौलत है। कोई मैले-कुचैले कपड़े पहन कर दूसरे के यहाँ जाता है तो उससे कहा जाता है—वहीं बैठो। और जब कोई सज-धज कर जाता है तो उसे कहते हैं—पधारिये सा., इधर पधारिये। ऊँचे पधारिये। इसका क्या कारण है? यह सब अपने पुण्य-पाप का ही फल है।

निर्धन अगर अभिमान करता है तो उसकी कौन सुनता है? सब बड़ों की कृपा-कटाक्ष की प्रतीक्षा करते हैं। यह बड़प्पन कहाँ से आता है? भाई! पुण्य ही बड़ा बनाता है। जब प्रबल पुण्य का उदय आता है तो कंगाल भी बादशाह बन जाता है।

मानव! सुन लीजे एक धर्म जगत् में सार ॥ टेक ॥

हे मानव ! तू ने पाप तो बहुत किए, किन्तु धर्म नही किया। भैया ! यह दु:ख उसी के फल हैं। जैसे तू पाप करने मे राजी रहा वैसे धर्म करने मे नही रहा। धर्म करने मे उद्यत रहता तो यह दुःख क्यो सामने आते ? क्यो मुसीबत भुगतनी पड़ती ?

वणिक रहे एक शहर में, है दीन दु:खी बेकार ॥

मानव ! कर लीजे, है धर्म जगत् में सार ॥

ऐ मनुष्यो ! पाप मत करो। जगत् मे जितने दु:ख हैं वे सब बुरे कर्मों के फल हैं। सब फल पूर्व जन्म के कृत्यो से उत्पन्न होते हैं। यह धर्म करने का अपूर्व अवसर मिला है। धर्म ही ससार मे सार है। धर्म करोगे तो धन-धाम आदि सुख के साधन अनायास ही उपलब्ध हो जाएंगे। 'एकहि साधे सब सधे' अर्थात् एक धर्म की आराधना करने से सब की आराधना आप ही आप हो जाएगी।

आप कहते है – महाराज ! धर्म कैसे करे ? पैसा तो है ही नही। मगर भाई ! किसने बतलाया है तुम्हे कि पैसा नही है तो धर्म भी नही हो सकता ? किसने कहा है कि पैसे से ही धर्म होता है ? धर्म की आराधना का तरीका तो निराला ही है। ऊँचे धर्म की आराधना पैसे से नही होती, बल्कि पैसे के परित्याग से होती है। देखो, बड़े-बड़े धनवान् चक्रवर्ती और सम्राट, सेठ-साहूकार धन को त्याग कर ही धर्म की आराधना करने को उद्यत हुए थे। इससे स्पष्ट है कि धन से धर्म नही होता वरन् धन के त्याग से धर्म होता है।

कहा जा सकता है कि जब धन होगा तभी तो उसका त्याग किया जा सकेगा ? धन होगा ही नही तो त्याग कैसे किया जाय और धर्म किस प्रकार हो ? मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है। जो अपने शरीर को स्वच्छ रखना चाहता है, उसके शरीर पर अगर मैल लगा है तो उसे दूर करेगा और स्वच्छ होने का प्रयास करेगा मगर जिसके शरीर पर मैल नहीं है वह क्या पहले मैल लगाएगा और फिर उसे दूर करेगा ? नही। तो जैसे स्वच्छता के लिए पहले मैल लगाना और फिर उसकी सफाई करना आवश्यक नही है, उसी प्रकार धर्म की आराधना के लिए पहले धन कमाना और फिर उसका त्याग करना आवश्यक नही है। जिसके शरीर पर मैल नही है, वह नये सिरे से मैल न चढने दे, यही उसकी स्वच्छता है। इसी प्रकार जिसके पास धन नही है, वह धन कमाने की आकांक्षा न करे, धन के प्रति ममता और मूर्छा का भाव उत्पन्न न होने दे, इसी मे उसकी धर्मनिष्ठता है।

एक व्यक्ति पहले अपने शरीर पर जान बूझ कर कीचड पोत लेता है और फिर उसे पानी से धोता है। दूसरा व्यक्ति असावधानी से लगे हुए कीचड़ को साफ करता है और तीसरा व्यक्ति कीचड लगने ही नही देता। अब आप विचार करो कि इन तीन मे से आप किसे अधिक अच्छा समझते हैं ? निस्सन्देह आप यही कहेगे कि जो सावधानी के साथ प्रवृत्ति करता है और कीचड लगने ही नही देता, वही सब से अधिक बुद्धिमान् है। असावधानी से लगे हुए कीचड को साफ करने वाला भी बुद्धिमान् हैं, किन्तु सफाई करने के वास्ते जान बूझ कर कीचड पोत लेने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार बुद्धिमान् नही कहला सकता।

धर्म के लिहाज से धन भी कीचड के समान है । धर्म साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पड़ता है । ऐसी स्थिति मे जो धन के प्रति ममत्वहीन है वही सब से अधिक विवेकशाली है। जो उपार्जित किये हुए धन का परित्याग करता है वह भी विवेकशाली गिना जायगा, किन्तु जो धर्म के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका त्याग करना चाहता है, उसे बुद्धिमान् किस प्रकार कहा जा सकता है ? वह तो उलटी गंगा बहाना चाहता है ।

कहने का तात्पर्य वह है कि अगर तुम्हारे पास पैसा नही है और पैसे के प्रति ममता का भाव नही है तो तुम भाग्यशाली हो। यह मत सोचो कि पैसे के विना धर्म नही हो सकता। अलवत्ता, पैसे के प्रति आसक्ति मन मे नही रहनी चाहिए। अगर आसक्ति होगी तो दीनता आएगी और उतने अश मे धार्मिकता नही आ सकेगी ।

वीतराग देव के द्वारा उपदिष्ट धर्म बहुत व्यापक और उदार है। भगवान् ने दान, शील, तप और भावना को धर्म वतलाया है। अगर कोई दान नही दे सकता तो शील का पालन कर सकता है, तपस्या कर सकता है और कम से कम शुद्ध भावना तो रख ही सकता है। इसमे तो पैसा लगता ही नही है!

किसी गांव मे एक दु खी वणिक् रहता था । वह जो भी काम करता, उलटा ही पडता था । लाभ के लिए किये गये कामो से उसे हानि ही उठानी पड़ती थी । वह सोचता-न जाने कितने काल तक मुझे पाप कर्मो का फल भोगना पड़ेगा ! एक बार इसी

प्रकार विचार करते-करते वह सो गया। जब उठा तो उसकी आँखो से आँसू झरने लगे। वह रोने लगा। दिन निकला। वह सोच रहा था कि मैंने पूर्वजन्म में धर्म नही किया और पापकर्म किये। इसी कारण मुझे यह फल भोगने पड़ रहे हैं। वह उसी गाँव मे विराजमान मुनिराज के पास आया। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक गाव मे मुनिराज विराजमान रहेगे तब तक उनके दर्शन किये बिना अन्न-पानी ग्रहण नही करूँगा।

कर्म अन्तराय जो टूटे, तो करना पर उपकार ॥

वह वणिक् प्रात.काल ईश्वर का भजन कर के मुनिराज के दर्शन करने जाता और फिर बाजार मे जाता। संसार में पुण्य और पाप का भी उतार-चढाव होता रहता है। जब उसके पाप का उतार आया और उसने दर्शन करके ही अन्न-पानी ग्रहण करने और व्यापार आदि करने का नियम ले लिया तो उसे व्यापार मे भी मुनाफा होने लगा। धीरे-धीरे वह हजारपति और फिर लखपति हो गया। उसने अपनी पत्नी को भी सोने से लाद दिया। जो पडौसिने पहले उसकी ओर आख उठा कर भी नही देखती थीं और सामना हो जाने पर नजर चुरा कर या कतरा कर निकल जाती थी, वही अब उसके पास आने लगी और सेठानी सा., कहकर चापलूसी करने लगी। राजा ने उस वणिक् को नगर सेठ की पदवी दी।

नगर-सेठ का पद देकर, किया राजा ने सत्कार ॥

अब उस वणिक् ने देश, जाति और समाज के हित के लिये लाखो रुपये खरचने शुरू किये। सारी रंगत ही बदल गई।

दोनो भव सुखी हुआ, और यश छायो संसार ॥

भाइयो ! धर्म करने से वह इस भव मे भी सुखी हुआ और परभव मे भी सुखी हुआ। यह सब धर्म का ही माहात्म्य है !

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक आत्मा के पास ईश्वरीय गुणों का अक्षय भण्डार है। उन गुणो को विकसित करना प्रत्येक आत्मा के हाथ की बात है। आत्मा चाहे तो अपना विकास करके ईश्वरीय स्वरूप प्राप्त कर सकता है। ऐसा करने के लिए सिर्फ धर्म की आराधना करने की आवश्यकता होती है।

भविष्यदत्त-चरित—

भविष्यदत्त धर्म के प्रताप से ही हस्तिनापुर का राजा बन गया। वह अब निष्कटक राज्य भोग रहा है। वह पुण्य लेकर आया था और नवीन पुण्य का भी उपार्जन कर रहा है। अतएव उसे किसी प्रकार का कष्ट नही, किसी तरह की कमी नही। वह आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगा और न्यायनीति से प्रजा का पालन करने लगा।

भविष्यदत्त को एक दिन तिलकपुरपट्टन को पुन आबाद करने का विचार आया। उसकी सुख-समृद्धि के बीज तिलकपुरपट्टन मे ही बोये गये थे और सच पूछो तो आज वह जिस ऊँची स्थिति पर पहुँचा है, उसमे तिलकपुर पट्टन का महत्त्व-पूर्ण भाग है। अतएव उस नगर से प्रीति होना उसके लिए स्वाभाविक ही था। इस कारण उसने घोषणा की कि तिलकपुर

पाटन में जाकर बसने वालो को सब तरह की सुविधाएँ दी जाएँगी। उनसे किसी प्रकार का कर नही लिया जायगा।

राजा भविष्यदत्त की यह घोषणा सुनकर बहुत से लोग वहा जा बसे और व्यापार आदि करने लगे। धीरे-धीरे वह नगर फिर पहले की तरह आबाद हो गया। भविष्यदत्त की यह आकाक्षा भी पूरी हो गई।

भविष्यदत्त राजा के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वो को भली भाति समझता था। प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, सबल निर्बल को पीडा न पहुँचा सके, कोई किसी के अधिकारों का अपहरण न कर सके, धनी निर्धनो को न चूस सके, प्रजा मे अनीति और अन्याय न फैल जाय, देश मे दुराचार को उत्तेजना न मिले, सब लोग अपने-अपने कर्त्तव्य का प्रमाणिकता के साथ पालन करे, राज्य के अधिकारियो को किसी प्रकार की अनीति करने का अवसर न मिले, रिश्वतखोरी की आदत न हो, इत्यादि बातों की वह बहुत सावधानी रखता था। दूसरे राजाओ की तरह वह भोग-विलास मे डूबने वाला नही था। उसने अपने आप को प्रजा का सेवक और देश का रक्षक बनाया। वह महलों मे पडा पडा मौज न उडाता वरन् प्रजा के सम्पर्क मे बना रहता था। कोई भी दुखिया उसके पास पहुँच सकता था और अपने दुख-दर्द की बात नि संकोच भाव से सुना सकता था।

एक दिन भविष्यदत्त अपनी राजसभा मे बैठे हुए थे कि उसी समय वहाँ के उद्यानपाल ने आकर निवेदन किया-'पृथ्वीनाथ ! बधाई है।'

भविष्यदत्त—किस बात की वधाई देने आये हो भाई !

उद्यानपाल—विमलवुद्धि महाराज बाग मे पधारे है ।

उद्यानपाल के मुख से यह हर्ष समाचार सुन कर भविष्यदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होने उद्यानपाल को आभूषण आदि देकर सन्तुष्ट किया । उसी समय सिंहासन से नीचे उतर कर, उस ओर मुंह करके तीन बार वन्दना की और फिर सिंहासन पर विराजमान हो गये ।

दूसरे दिन प्रात काल खूब सज-धज कर राजा भविष्यदत्त हाथी पर सवार होकर अवधिज्ञान धारी मुनिराज विमलवुद्धि के दर्शनार्थ गये । तिलक सुन्दरी और सुमति भी साथ गईं । नगर सेठ धनसार, माता कमलश्री आदि भी साथ गई । मुनिराज की सेवा में पहुंच कर सब ने यथोचित विधि के अनुसार वन्दन-नमस्कार किया और सब हाथ जोड कर मुनिराज के समक्ष बैठ गये ।

मुनिराज अत्यन्त शान्त, दान्त, त्यागी, वैरागी, ज्ञानवान् और संयमवान् थे । उनके अन्त.करण की निर्मलता चेहरे पर प्रतिविम्बित हो रही थी । मुनिराज ने गम्भीर भाव से उपदेश देना आरम्भ किया । कहा—

भव्य जीवो ! इस ससार मे अगर कोई सारभूत पदार्थ है तो वह धर्म ही है । धर्म के सिवाय और सब पदार्थ असार हैं । विवेकशील पुरुषो का कर्त्तव्य है कि वे सारभूत और निस्सार पदार्थों को पहचान कर सारभूत पदार्थ को स्वीकार करे और निस्सार पदार्थों की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले उद्योग से विरत

हों। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है और विषयजन्य सुख, सुखाभास है, दु:ख का कारण है। अतएव आत्मिक सुख ही सारभूत है। उसी को प्राप्त करने का प्रबल उद्योग करने में मानव-जीवन की सार्थकता है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म जतु से लगाकर समस्त प्राणी एक मात्र सुख की ही अभिलाषा करते हैं। अभिलाषा ही नही करते, वल्कि उसी के लिए सदा चेष्टाएँ करते रहते हैं। मगर देखा जाता है कि अधिकाश को अन्त मे भग्न मनोरथ होकर निराशा का ही सामना करना पड़ता है। उन्हे जब सुख के बदले दु:ख भोगना पडता है तो वे विकल हो जाते हैं, छटपटाने लगते हैं और पश्चात्ताप करते हैं। इसका कारण क्या है?

सुख के बदले दु:ख की प्राप्ति होने के प्रधान कारण दो हैं। प्रथम यह कि साधारण लोग सुख के स्वरूप को सम्यक् रूप से समझते ही नही हैं। दूसरे सुख प्राप्त करने के लिए विपरीत प्रयास करते हैं – पूर्व की ओर जाने के उद्देश्य से पश्चिम की ओर कदम बढाते हैं। कितने ही लोग धन-सम्पत्ति की प्राप्ति मे सुख समझते हैं, कोई-कोई कुटुम्ब-परिवार के सयोग मे सुख समझते हैं, कोई राजपाल आदि वैभव मे सुख की कल्पना करते हैं। इस प्रकार जिसने जिस वस्तु मे सुख मान लिया है, वह उसी के संयोग के लिए दिन-रात व्यग्र बना रहता है। मगर ससार का अनुभव बतलाता है कि यह सब भ्रम पूर्ण धारणाएँ हैं। किसी भी परदार्थ से, बाह्य वस्तु से सुख की प्राप्ति नही होती। यही नही, परदार्थ दु:ख के ही कारण बनते हैं। ज्यों-ज्यो परपदार्थों का संयोग साधा जाता है, त्यो-त्यो दु:ख की मात्रा बढती ही

चली जाती है। यही कारण है कि जिन ज्ञानवान् पुरुषों को सुख का वास्तविक स्वरूप प्रतीत हो गया है, वे परपदार्थों के संयोग से बचने का ही प्रयास करते है। आज तक जो महानुभाव दुःखो से वच सके हैं और असली सुख को प्राप्त कर सके है, उन सब ने एक ही मार्ग अपनाया है और वह यही कि वे पर मे 'स्व' बुद्धि का परित्याग करके आत्मनिष्ठ बने हैं। जगत् के पदार्थों से जब आत्मीयता की भावना हट जाती है तो चित्त मे लघुता का भाव उत्पन्न होता है और जितनी-जितनी लघुता बढ़ती जाती है उतनी ही उतनी निराकुलता बढती जाती है। ज्यो-ज्यों निराकुलता बढ़ती जाती हैं त्यो-त्यों सुख की वृद्धि होती है। इस प्रकार आत्मा जब परिपूर्ण रूप से वीतराग बन जाता है अर्थात् विश्व के किसी भी पदार्थ पर उसका ममत्व शेष नहीं रह जाता, तभी उसको परिपूर्ण सुख की--अनन्त अक्षय अव्यावाध सुख की-उपलब्धि होती है।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि सुख का मार्ग सांसारिक पदार्थों को ग्रहण करना कही, बल्कि त्यागना है।

मुनिराज ने फिर कहा—भव्य जीवो ! जीवन क्षणभगुर है और यौवन विद्युत की चमक के समान है। अतएव मनुष्य-जीवन पाकर निश्चिन्त नही हो जाना चाहिए। इस जीवन को सफल एव सार्थक बनाने के लिए अप्रमत्त भाव से धर्म की आराधना करनी चाहिए। यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि जीवन के जो मूल्यवान क्षण व्यतीत होते जा रहे हैं, वे फिर कभी लौट कर नही आ सकते। यह भी स्पष्ट है कि नर--पर्याय पुन.-पुनः प्राप्त

नही होती । अतएव जिसे पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रकर्ष से यह परम प्रकृष्ट पर्याय प्राप्त हुई है, उसे क्षण भर भी प्रमाद नही करना चाहिए और धर्म की आराधना करके आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिए ।

मुनिराज विमलवुद्धि का इस प्रकार का सदुपदेश सुन कर भविष्यदत्त बहुत प्रभावित हुआ । उपदेश जव समाप्त हो चुका तो भविष्यदत्त खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगा-मुनिनाथ ! आप अवधि ज्ञानी हैं। कृपा करके मेरा संशय निवारण कीजिए । मुनिवर ! कृपया वतलाइए कि पूर्व मे मैंने कौन—सा पुण्य उपार्जन किया था ? क्या करणी की थी ? और मैनागिरि पर किस कर्म के उदय से मुझे भटकना पड़ा ? किस कारण मुझे उस दु:ख की प्राप्ति हुई ?

राजा भविष्यदत्त के प्रश्न सुन कर मुनिराज बोले-राजन् ! पहले तुम्हारा जन्म जहाँ हुआ था और तुमने जो करणी की थी, वह सब सक्षेप में मैं कहता हूँ । यह कथन कुतूहल की उपशान्ति के लिए नही, वरन् शिक्षा ग्रहण करने के लिए है । अतएव ध्यान-पूर्वक श्रवण करो ।

९-११-४८ }

३

परमात्मा बनने का पथ

स्तुतिः—

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! जिस प्रकार आप मे ज्ञान सुशोभित होता है, वैसा हरि हर आदि किसी भी अन्य मे नही होता । अगर सब में

एक-सा ज्ञान होता तो संसार में जो मतभेद दिखाई देता है, वह क्यो होता ? मतभेद का कारण समझ का फेर ही है। सब का ज्ञान एक सरीखा हो तो समझ मे फेर नही हो सकता । दुनिया मे कई प्रकार के देवों की कल्पना की जाती है किन्तु जैसे मणियों का तेज असाधारण होता है, उसी प्रकार वीतराग भगवान् का ज्ञान भी असाधारण है ! कांच के टुकड़े मे, चाहे उस पर सूर्य की किरणें ही क्यो न पड रही हों, वह चमक नही होती जो मणि में होती है। इसी प्रकार राग-द्वेष से मलीन देवताओ मे निर्मल और परिपूर्ण ज्ञान नही हो सकता।

भगवन् ! आपने पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके धर्म का जो मार्ग प्रकट किया है वही मार्ग आत्मकल्याण के लिए परम उपयोगी है। वैसा मार्ग किसी अन्य के द्वारा प्रकाशित नही हुआ । ऐसे परिपूर्ण ज्ञानी भगवान् ऋषभदेव है। उन्ही को हमारा वार-वार नमस्कार है।

भाइयों ! ससार मे अनेक मत प्रचलित हैं। उन सब मतों की मान्यताएं एक दूसरे से विरुद्ध है। कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ कहता है। और फिर एक-एक मत के अन्तर्गत भी अनेक पथ या सम्प्रदाय होते हैं। वे भी परस्पर विरोधी विचार प्रकट करते हैं। आत्मकल्याण के इच्छुक पुरुष के सामने कदाचित् विकट समस्या उपस्थित हो जाती है कि किस पथ पर चला जाय ? किस की बात सत्य मानी जाय ? किस मार्ग पर चलने से वास्तव मे आत्मा का हित होगा ? इस प्रकार की समस्या जब उपस्थित होती है और दिमाग जब उसे सुलझाने मे समर्थ नही हो पाता तो कभी-कभी बड़ी बेचैनी होती है। कोई-कोई लोग तो ऐसे अव-

सर पर चिढ-से जाते है । साधारण लोगों के समक्ष ही ऐसी समस्या आती हो सो बात नही है । बड़े-बड़े विचारक भी कभी-कभी उलझन मे पड जाते है । ऐसे ही लोगों मे से किसी ने कहा हैः—

तर्कोऽप्रतिष्ठ. श्रुतयो विभिन्नाः,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ॥
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।
महाजनो येन गत. स पन्थाः ॥

अर्थात्–तर्क कोई स्थिर वस्तु नही है । उससे कभी एक बात सिद्ध हो जाती है तो कभी उसके विरुद्ध दूसरी ही बात सिद्ध हो जाती है । तर्क करने वाला यदि कुशाग्र-बुद्धि होता है तो वह किसी भी पक्ष को ग्रहण करके,अपने अनुकूल युक्तिया खोज निकालता है और अपने पक्ष को सही सिद्ध कर देता है । मगर जब उससे अधिक बुद्धिशाली कोई दूसरा विद्वान् उस पक्ष पर विचार करता है तो वह उसे खण्डित कर देता है । ससार मे ऐसा ही चल रहा है । अतएव तर्क पर भरोसा करके किसी मार्ग को अपना लेना खतरनाक है ।

तर्क का त्याग करके अगर कोई शास्त्र की ओर दृष्टि दौडाता है तब भी उलझन सुलझती नही है और ज्यों की त्यो बनी रहती है । कारण यह है कि ससार मे शास्त्र भी भिन्न-भिन्न हैं । वे सब आत्मकल्याण के अलग–अलग मार्ग बतलाते है और एक दूसरे की बातो का विरोध करते हैं । ऐसी स्थिति में यह निश्चय नही किया जा सकता कि किस शास्त्र की बात मानी जाय और किसकी न मानी जाय ?

आगम को भी जाने दे और मुनि-महात्माओ की शरण ले तब भी समस्या हल नही होती। संसार मे बहुत-से मुनि-महात्मा कहलाने वाले हैं, जो नाना प्रकार के आचार-विचार का पोषण एव समर्थन करते है। उनमे से किसके द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चलना चाहिए और किसके बतलाये मार्ग से बचना चाहिए, किसकी बात प्रामाणिक माननी चाहिए और किसकी नही, यह निश्चय करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार उलझन मे पड़ा हुआ व्यक्ति अन्त मे झुझलाकर कहता है—धर्म का मर्म गुफा मे अंधकार मे छिपा हुआ है, उसे कैसे समझा जाय ? किस प्रकार पहचाना जाय ? ऐसी स्थिति मे बस एक ही मार्ग है और वह यही कि जिस मार्ग पर महाजनों ने गमन किया है—महाजन जिस पथ पर आत्म-कल्याण के लिए चले हैं, उसी मार्ग पर हमे चलना चाहिए। उसी पर चलने से आत्मा का हित होगा।

कहने को तो यह कह दिया और महाजनो के मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया, परन्तु इससे भी क्या समस्या हल हो गई ? नही प्रश्न सामने आ खडा हुआ कि 'महाराज' किसे समझा जाय ? जगत् मे महान् समझे जाने वाले पुरुष को महाजन समझे अथवा बहुत लोगो को महाजन समझे ? इस प्रश्न पर बड़े-बड़े विद्वानो मे मतभेद रहा है और कहना चाहिए कि आज तक इसका अन्तिम रूप से समाधान नही हुआ।

हमारे विचारो का प्रवाह जब तर्कानुगामी होकर बहता है, तब इस प्रकार की उलझने और अनिश्चित स्थितियाँ उत्पन्न हो

जाती हैं। वास्तविक बात यह है कि मनुष्य जब एकान्त तर्क की तरफ झुक जाता है तो उसे खण्डन ही खण्डन मिलता है। तर्क कैंची के समान है, जिसका काम काटना ही काटना, टुकडे-टुकडे ही करना है। कैंची तोड़ सकती है, जोड़ नही सकती। तर्क किसी मान्यता का खण्डन कर सकता है, मण्डन नहीं कर सकता। जोड़ना, मण्डन करता, निश्चय करना श्रद्धा का काम है। जीवन के श्रेयस् के लिए तर्क और श्रद्धा—दोनो का यथोचित रूप से उपयोग करने की आवश्यकता होती है। जिसके हृदय मे तर्क-युक्त श्रद्धा और श्रद्धायुक्त तर्क होता है, उसे कल्याण का मार्ग मिलने मे कठिनाई नही होती।

थोडी देर के लिए धर्म की बात जाने दीजिए और सिर्फ लोक व्यवहार की ही बात को लीजिए। आप अपने जीवन व्यवहार का अगर भली-भाँति, गहराई के साथ अध्ययन करेंगे तो साफ मालूम होने लगेगा कि तर्क और श्रद्धा दोनो के यथा-योग्य सबध से ही लोक व्यवहार निभ रहा है। जब लोक व्यवहार के सम्बन्ध मे हम दोनो का सम्बन्ध करके चलते है तो धर्म व्यवहार मे भी क्यो न उनका सम्बन्ध करे ? क्यो एकान्त को पकड़ कर बैठे ?

वीतराग भगवान् ने जिस तत्त्व का उपदेश दिया है, वह तर्क और श्रद्धा दोनो दृष्टियो से ही सगत और समीचीन सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ—भगवान् ने फर्माया है-'एगे आया।' भगवान् ने अपने ज्ञान के प्रकाश मे देखा कि सग्रहनय से तो आत्मा एक है और यो आत्माएँ अनन्त हैं। मनुष्य जैसे सर्वाधिक

विकास प्राप्त प्राणी से लेकर कीड़े-मकोड़े और सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु की आत्मा की तरफ ध्यान दिया जाय और गहराई से परीक्षण किया जाय तो साफ दिखाई देगा कि सब आत्माओं में बहुत-सी ऐसी समान बातें हैं, जिनके आधार पर निःसकोच एव निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्रत्येक आत्मा सजातीय है—एक ही वर्ग की है। कहा है:—

आहारनिद्राभयमैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ॥

अर्थात् चाहे पशु हो, चाहे मनुष्य हो, सब को आहार की आवश्यकता होती है, सभी नींद लेते है, सब भय के कारण उपस्थित होने पर भयभीत होते हैं और सभी मे कामवासना विद्यमान होती है।

इस कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सब आत्माएँ एक जातीय हैं और यही बात शास्त्रीय शब्दो मे यों कही गई है कि सग्रह नय की अपेक्षा आत्मा एक है।

अब अगर दूसरे दृष्टिकोण से देखते हैं तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक शरीर मे स्थित आत्मा अलग-अलग हैं। जब सभी आत्माओं के सुख-दुःख अलग-अलग हैं, सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न प्रकार के फल का उपभोग करती है तो यह मानना ही पड़ेगा कि उन सब का अस्तित्व अलग-अलग है।

आगम मे आत्मा के दो भेद किये गये हैं—आत्मा और परमात्मा। आत्मा के साथ कर्मों का सयोग है और परमात्मा समस्त कर्मो से अलग हो चुका है आत्मा शब्द के साथ 'परम' विशेषण लग गया तो परम+आत्मा अर्थात् 'परमात्मा' बन गया। यह परम विशेषण आत्मा की परिपूर्ण विशुद्ध अवस्था का द्योतक है। परमात्मा वीतराग है, सर्वज्ञ है, जब कि आत्मा विकारों से युक्त है और अल्पज्ञ है। आत्मा को यह भी खबर नही है कि पीठ के पीछे क्या हो रहा है? उसमे इतना गम्भीर अज्ञान भरा हुआ है। मगर परमात्मा में अज्ञान नही है। उसके ज्ञान की सीमा नही है। काल और क्षेत्र की सीमाओ को लांघ कर परमात्मा का ज्ञान असीम और अनन्त बन गया है।

जिस आत्मा ने परमात्मपद प्राप्त कर लिया है, वह पहले साधारण आत्मा के रूप मे था। उसने साधना के पथ पर चल कर समस्त विकारो को दूर किया और परमात्मा का पद पाया है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा के लिए वह मार्ग खुला हुआ है। जो भी आत्मा परमात्मपद की प्राप्ति करने का इच्छुक हो वह उस साधना को अपनाकर परमात्मा बन सकता है। परमात्मा बनने के लिए जो साधना करनी पड़ती है, उसमे दो बातो का मुख्य रूप से समावेश होता है। शास्त्र मे कहा है—

दोहिं ठाणेहि अणगारे सम्पन्ने अणाइयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकतार बीइवइज्जा। तं जहा-विज्जाए चेव, चरणेण चेव।

(ठाणागसूत्र, २, १)

आशय यह है कि सम्यग्ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न साधु अनादि-कालीन ससार रूपी अटवी को लाघ जाता है।

हे आत्मन् ! अगर तुझे परमात्मपद की साधना के पथ पर चलना है तो तू सब से पहले दुनिया की खटपट को त्याग दे। दुनिया की खटपट मे पड़ा रहेगा तो तेरा पार उतरना बहुत कठिन है। कहा जा सकता है कि माँ, बाप, स्त्री, हवेली, बाग-बगीचा सोना, हीरा आदि-आदि दुर्लभ और प्रिय पदार्थों का परित्याग कैसे कर दिया जाय ? पर भाई, एक दिन तो इनका त्याग करना ही पडेगा। इनके लिए सारा जीवन व्यतीत करने के पश्चात्—सारी जिन्दगी इनके फेर मे पड कर नष्ट कर देने के बाद इनका त्याग तो होगा ही, फिर जीते जी, स्वेच्छा से त्याग क्यो नही कर देता ? लाचार होकर, अनिच्छा से जो त्याग करना पड़ेगा, वही त्याग अगर स्वेच्छापूर्वक किया जाय तो कल्याण होने मे विलम्ब न लगे।

आत्मा, परमात्मा तो बनता है, मगर यकायक नही बन सकता। परमात्मा बनने से पहले उसे महात्मा बनना पडता है। महात्मा बनने के लिए स्त्री, पुत्र, धन-सम्पदा आदि का त्याग करना पड़ता है। जो सासारिक पदार्थों मे आसक्त है, दुनिया के वैभव को छोड़ने मे असमर्थ हैं और कहते हैं कि—अजी, क्या करे, इतना त्याग तो हम से नही हो सकता, वे न तो महात्मा बन सकते हैं और न परमात्मा बन सकते हैं।

भाइयो ! संसार से निस्तार पाना इतना सरल नही है। यह ससार अनादि है। अनादि काल से आत्मा नाना गतियों और

योनियो मे भटक रही है। यह महान् अटवी के समान हैं। इस ससार-अटवी मे नाना प्रकार की झाड़ियाँ हैं, जिनमे मोही जीवो की गाड़िया अटक जाती हैं। जङ्गल मे रास्ते के किनारे जो झाड़ियाँ खड़ी रहती हैं, वे पथिक को उलझा लेती है। जो अत्यन्त साव-धान होकर चलता है वह तो आगे वढ जाता है, परन्तु जरा-सी भी असाववानी करने वाला उनमे उलझ रहता है। इसी प्रकार ससार मे व्यवहार करते समय वहुत सावधानी की आवश्यकता है। यहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, ममता आदि की अनेका-नेक जटिल झाडियाँ मौजूद हैं। जो सावधानी से चूका, समझ लो कि वह उलझ गया! आत्म-कल्याण के पथिक को इनसे वचने के लिए सदैव सावधान रहने की आवश्यकता होती है।

ससार रूपी अटवी की झाडियो मे विना उलझे निकल जाने के लिए दो-वातो की आवश्यकता है। प्रथम तो सही रास्ते को समझने के लिए सम्यग्ज्ञान या सच्ची विद्या चाहिए और फिर उस रास्ते पर चलने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। उसी पुरु-षार्थ को चारित्र कहते हैं। इस प्रकार विद्या और चारित्र दोनों की आवश्यकता है। ज्ञान और चारित्र में से किसी भी एक के अभाव मे परमात्मपद प्राप्त नही किया जा सकता और न ससार-कान्तार को पार किया जा सकता है।

ऊपर कहा गया कि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' अर्थात् कल्याण का मार्ग वही है जिस पर 'महाजन' चले हैं। 'जन' साधारण आदमी कहलाता है और उसके साथ 'महान्' विशेषण लगा देने से अर्थ निकलता है-साधारण श्रेणी के मनुष्यो से उच्च मनुष्य। मनुष्य मे महत्ता या उच्चता किस प्रकार आती है? कई

लोग धनवान् को बडा आदमी समझते है । जो जितना ज्यादा धनवान् है, दुनिया मे वह उतना ही बडा आदमी गिना जाता है। कई लोग सरकारी अधिकारी को बडा आदमी समझते हैं। कोई-कोई अधिक प्रतिष्ठापात्र पुरुष को महाजन या बड़ा आदमी समझते है। इस प्रकार बडे आदमी के विषय मे भी अनेक प्रकार के विचार प्रचलित हैं । हो सकता है कि धन के इच्छुक के लिए धनवान् ही बडा आदमी हो, जिसे नौकरी की अभिलाषा है उसकी दृष्टि मे सरकारी अधिकारी बडा आदमी जँचे, इसी प्रकार किसी दूसरे दृष्टिकोण से किसी को कोई और बडा आदमी मालूम पडे, मगर जहा आत्मकल्याण की दृष्टि हो, वहा इस प्रकार के बडप्पन की कोई कीमत नही है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो महाजन वही कहला सकता है जिसमे विद्या और ज्ञान की विशिष्टता हो । जिसका आचार, विचार और उच्चार (भाषण साधारण श्रेणी की जनता की अपेक्षा ऊँचे दर्जे का हो, वही 'महाजन' कहलाने का वास्तव मे अधिकारी है। लुच्चाई और बदमाशी करने वाला बडा आदमी नही कहला सकता । कहावत है—नागा सब से अलगा भला ! जिसके मुंह मे राम है और बगल मे छुरी है । जिसने अपना सिद्धान्त बना लिया है-रोटी खाना शक्कर से और दुनिया ठगना मक्कर से । जो किसी मुंह पर उसकी तारीफ करता है और पीठ पीछे बुराइयाँ करता फिरता है । भाई ! क्या उसकी होगी कभी भलाई ? अरे, वह खोदता है अपने लिये गहरी खाई ! वह बड़ा आदमी नही कहला सकता। उसे 'महाजन' का महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित पद नही दिया जा सकता। वास्तव मे 'महाजन' बनने के लिए आचार, विचार और उच्चार की उच्चता प्राप्त करनी चाहिए।

कोई किसी गाँव मे जाकर पूछता है कि इस गांव मे किसकी वस्ती है ? उत्तर मिलता है—लोगो की वस्ती । और यदि उस गांव मे पच्चीस पचास व्यापारियों के घर हो तो कहा जाता है कि महाजनो की बस्ती है । अब जरा विचार करो कि वे तो 'लोग' कहलाते हैं और तुम्हारे कौन-से सीग या पूंछ है कि महाजन कहलाते हो ? दूसरो के लडके छोरा-छोरी कहलाते हैं और आपके कुंवर साहब क्यो कहलाते हैं ? जो मन्दिर में बैठे हैं वे ठाकुरजी कहलाते है और राजपूत ठाकुर साहब कहलाते हैं। यह साहब कहा से आ गया ? कभी विचार करते हो कि समाज मे आपको जो मान मर्यादा और प्रतिष्ठा मिली है, उसका क्या कारण है ? इस मान-मर्यादा का मूल्य किस रूप में आपने चुकाया है ! जिन लोगो ने आपको बड़प्पन दिया है, उनके प्रति आपका कैसा व्यवहार है ? कभी उनके दु.ख सुख का विचार भी करते हो ? उनके कष्टो को निवारण करने का भी प्रयत्न करते हो ? जिनकी बदौलत आपको महाजन की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, कभी उनके प्रति समवेदना और सहानुभूति की भावना आपके हृदय मे उत्पन्न होती है ? ऐसा तो नही है कि सिर्फ उन्हे लूटने का ही विचार करते हो ? याद रखना चाहिए कि अगर अपनी प्रतिष्ठा का समुचित मूल्य न चुकाया तो प्राप्त हुई प्रतिष्ठा टिकाऊ नही होगी ।

ठाकुर के साथ 'साहब' और व्यापारियो के लिए 'महाजन' शब्द इसीलिए है कि उनकी वस्तो मे जो लोग रहते हैं, आवश्यकता होने पर उनकी रक्षा की जाय । उनके दु.ख-दर्द को दूर करने के लिए शक्ति लगाई जाय । उन्हे प्रेम की दृष्टि से देखो । उनकी सार-सम्भाल करो । उनके दु.ख को अपना ही दु.ख

समझो। आप मेवा-मिष्टान्न खाओ तो उन्हे रूखी रोटी का भी अभाव न होने दो। भाइयो ! जिनकी वदौलत आप वड़े कहलाते हो और जिनके कारण आपको वैभव मिला है, उन्हे अपने पुत्र के समान समझो। ऐसा करोगे तो आपका वड़प्पन सार्थक होगा और स्थायी भी होगा और अगर आपने उन्हें स्वार्थ साधन का हथियार ही वनाये रक्खा तो निश्चित समझ लेना कि वह हथियार आपके विरुद्ध ही प्रयोग मे आएगा। आज विश्व मे क्रान्ति की जो लहर उठी है, वह साधारण नही है। उसका सामना करने के लिए सामूहिक रूप से अपने तौर-तरीके वदलने की आवश्यकता है। कहा है:—

जैन धर्म यतना में कह्यो श्रीजिनवर,
जैन बिना फैन हिंसा धर्म न होय रे।
जैन में जनम लियो महाजन नाम दियो,
खोटा-खोटा काम कियो गयो कुल खोय रे॥
जयणा कीधी सुसलिया को जयणा कीधी परेवा को,
जयणा कीधी धर्मरुचि नमि जिन जोय रे।
रिख लालचंद कहे जयणा करे धन्य सो हु,
जयणा बिना जग सहु रितो गयो खोय रे॥

भगवान् ने फर्माया है कि यतनापूर्वक उठने, बैठने, चलने, खाने-पीने, सोने आदि मे ही धर्म की रक्षा है। वोलना ऐसा कि जिससे किसी को कष्ट न हो, किसी के मर्म पर आघात न हो। खाने-पीने मे भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक रक्खे। चलने में योग्य-

अयोग्य का खयाल बना रहे। उठने-बैठने और सोने मे भी यतना-सावधानी बरतनी चाहिए। यहाँ तक कि खडे रहने मे भी सभ्यता और यतना का बराबर ध्यान रखना चाहिए। बड़ा आदमी वही कहलाता है जो प्रत्येक क्रिया खूब सोच-समझ कर करता है, इस तरह कि इज्जत मे किसी प्रकार फर्क न आवे। हर किसी के घर न जाना, असमय मे किसी के यहा न जाना। अवसर का विचार करना, जिससे घर के स्वामी को अप्रीति न हो और शंका भी उत्पन्न न हो। तू चाहे नीति पर है और तेरे मन मे तनिक भी दुर्भाव नही है, फिर भी यदि दूसरे को शका करने का अवसर देता है तो समझ ले कि तेरी इज्जत मे फर्क आ गया। सभ्य पुरुष को सदैव इस बात का विचार रखना चाहिए कि क्या करने योग्य है और क्या नही करने योग्य है? इन सब बातो का विवेक विद्या से-ज्ञान से-उत्पन्न होता है। विद्यावान् पुरुष विचारशील होता है। कहा है-

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपुनो, जग में होत हँसाय॥

देखो, रावण ने बिना विचार किये एक ऐसा काम कर डाला जिससे उसकी तमाम प्रतिष्ठा धूल मे मिल गई। लंका के राज्य से हाथ धोना पडा, यहां तक कि प्राण भी गँवाने पड़े। इतना लम्बा समय बीत जाने पर भी आज तक लोग उसक पुतला बना कर जलाते हैं। उसके हाथ क्या आया? उसने क्या किया? व्यर्थ ही बर्बाद हो गया! आज भी लोग रावण का अपमान करते है और उसे पतित समझते है। इसका एक मात्र

कारण यही तो है कि उसने मर्यादा का उल्लघन किया । अतएव प्रत्येक कार्य करने से पहले गम्भीर सोच-विचार करने की आवश्यकता है ।

बहिन, माता, पिता, भाई, पड़ौसी, गांव वाले, पच आदि कोई भी क्यो न हो, सब के साथ व्यवहार करते समय योग्य-अयोग्य की बात न भूलो । किसके साथ कैसा व्यवहार करना योग्य है, यह बात जो सदा ध्यान मे रखता है और इसी के अनुसार व्यवहार करता है, वही प्रतिष्ठित व्यक्ति गिना जाता है ।

कई लोग सोचते हैं - हमे क्या परवाह है ? हमे क्या गर्ज है ? परन्तु भाई, परवाह और गर्ज तो उसे रहती है जो अपनी इज्जत रखना चाहता हो । जिसे अपनी प्रतिष्ठा का परवाह नही है, इज्जत का खयाल नही है, वह चाहे जो कर सकता है, चाहे जो कह सकता है और चाहे जो सोच सकता है । मगर ऐसे लोगों की दुनिया मे कोई गिनती नही होती । वह जीवित रहे तो क्या और मर जायँ तो क्या ? गाँव मे कुत्ता मर जाता है तो कौन उसकी तरफ ध्यान देता है ? और यदि कुत्ता जिन्दा रहता है तो भी कौन उसकी परवाह करता है ? इसी प्रकार बेइज्जती के साथ जीवित रहने और मरने वाले की भी कोई परवाह नही करता । इस प्रकार जो कहता है कि हमे किसी की परवाह नही है, वास्तव मे उसकी भी कोई परवाह नही करता ।

सेठानी के हाथो पर रहने वाले गोखरू को देखो । वे कैसे वने हैं ? सोने ने पहले बहुत हथौड़े खाये । उसे फिर मूस मे तपना पड़ा । तव कही वे वाई के हाथों मे आकर रहे । तो बड़ा बनने के

लिए बड़े दुःख भुगतने पड़ते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में जो बड़ा है, वह अपनी ऊँची करणी के कारण ही बड़ा है। हो सकता है कि कोई बडा बन करके ऊँची करणी न करे और अपने बड़प्पन को लजावे; किन्तु आगे उसे अपनी करतूतो का फल भोगना पडेगा। फिर भी इस कथन में कोई अन्तर नही आता कि उसका मौजूदा बड़प्पन किसी पूर्वकालीन ऊँची क्रिया का ही फल है। वस्तुतः सदाचार के फल-स्वरूप ही मनुष्य मे बड़प्पन आता है।

बाजार से मैथी, पालक, वथुआ आदि भाजी खरीद कर घर ले जाते हो। क्या उसे यो ही खा जाते हो ? नही। उसका संस्कार करना पड़ता है और सस्कार करने के पश्चात् ही वह खाने योग्य बनता है। उसमे मसाला लगाना पड़ता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य जन्म से साधारण मनुष्य के रूप मे ही उत्पन्न होता है, परन्तु ज्ञान और सदाचार रूप सस्कार से जब सम्पन्न होता है तभी उसमे बडप्पन आता है। विद्या और सम्यक्-चारित्र का मसाला मनुष्य को महत्ता प्रदान करता है। मगर 'हमे क्या परवाह है !' ऐसा कहने वालो को इन बातो का क्या पता है ! अरे, जिन्हे टट्टी और पेशाब करने का भी शऊर नही है, वे क्या मनुष्य कहलाने योग्य हैं ? भगवान् महावीर ने उठने-बैठने तक के विषय मे सूचना की है—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं मासे जयं सये ।
जयं भुंजंतो भासंतो,पावकम्मं न बन्धइ ॥

—दशवैकालिक, अ. ४, मा. ८

क्या नर और क्या नारी, सभी को यथोचित यतना की आवश्यकता है। इधर बच्चे को खासी हो रही है, उसकी नाक बह रही है और उधर उसकी माता जामफल खा रही है ! वह नही सोचती कि उसके शीतल चीजे खाने से दूध मे भी शीतलता का अश पहुँचेगा और बच्चे को अधिक खासी हो जायगी। एक ओर पति को खासी और जुकाम हो रहा है और दूसरी ओर श्रीमतीजी ने शाम को दहीबड़े बना कर तैयार कर लिये। कहिए, क्या ऐसे अवसर पर दहीबडे बनाना योग्य है ? ऐसी स्त्रियों को क्या विवेकशालिनी कहा जा सकता है ! उन्हे यतना का खयाल है ? नही।

सारांश यह है कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे, चाहे वह छोटा हो या बडा, विवेक की आवश्यकता होती है। विवेक के अभाव में पद-पद पर हानि उठानी पडती है।

विवेक के बिना साधु की भी निन्दा होती है और साध्वी की भी। कोई साधु या साध्वी कितना ही उग्र एव उत्कट आचार का पालन क्यो न करे, अगर उसमे विवेक का पर्याप्त पुट नही है तो वह सराहनीय नही समझा जाता। आपको यह तो मालूम ही है कि आचार अर्थात् अथाने मे अगर विवेक न रक्खा जाय तो फूलन आ जाती है और फूलन आने पर उसे फैकना पड़ता है। उसमें सड़ाद पैदा हो जाती है, कीड़े पड़ जाते हैं और सारा आचार बेकार हो जाता है। इसके विपरीत, कोई-कोई आचार वर्ष-दो वर्ष तक भी नही बिगड़ता है और जब देखो तभी ताजा मालूम होता है। इसका कारण यही है कि विवेक के साथ-यतना पूर्वक उसकी सार-सम्भाल की गई है। तो इस प्रकार आचार भी

विचार के साथ होना चाहिए। जिस आचार के साथ विचार का सम्मिश्रण नही है, उसका कोई मूल्य नही है। वह मिथ्या-आचार है। उससे आत्मा का त्राण नही होता।

भगवान् ने साधु को प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्वक करने का ही विधान किया है। साधु व्याख्यान दे–धर्मोपदेश करे–तो भी विवेक से काम ले। उपदेश करने से पहले उसे जान लेना चाहिए कि श्रोता किस रुचि और किस योग्यता के हैं। इस बात को भली-भाति जान लेने पर ही वह उनके लिए लाभकारक उपदेश दे सकता है। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है कि ऐसा उपदेश मत दो, जिससे लोग आपस मे लड़ने लगें। ऐसा उपदेश भी न दो कि जिसे सुन कर लोगों की काम वासना उत्तेजित हो और उस दिन भी ब्रह्मचर्य का पालन करना उनके लिए कठिन हो जाय। एक बार एक ने ऐसा ही उपदेश दे दिया था कि जिससे श्रोताओं में आपस मे बहुत झगडा खड़ा हो गया था। इसीलिए भगवान् ने कहा है कि साधु को विवेकपूर्वक बोलना चाहिए।

गृहस्थो को भी पद-पद पर विचार करके व्यवहार करने की आवश्यकता है। थोडी-सी देर की, जरा-सी असावधानी भी, कभी-कभी घोर अनर्थ उत्पन्न कर देती है। बेटे की विधवा बहू हो तो श्वसुर को घर मे अधिक नही बैठना चाहिए। विधवा भोजाई से भी अमर्यादित बातचीत नहीं करनी चाहिए–हँसी-मजाक नही करना चाहिए और न अधिक सम्पर्क मे रहना चाहिए। बडी विमाता से भी आवश्यकता से अधिक वार्त्तालाप नही करना चाहिए। ऐसा न किया गया और अधिक सम्पर्क के कारण कदाचित् बुद्धि भ्रष्ट हो गई तो सारे घर की बदनामीहोगी।

कुल को कलक लगेगा। बाप-दादो की इज्जत पर पोता फिर जायगा। अच्छे घराने में जन्म लिया, महाजन कहलाए, फिर भी अगर नीचे काम किये तो कुल की लाज गई समझना चाहिए। लका मे पहुच कर दरिद्र रह जाय, नदी के किनारे पहुँच कर भी प्यासा रह जाय तो उसे अभागा ही कहा जायगा। इसी प्रकार महाजन के कुल मे जन्म पाकर जो नीच कृत्य करता है, वह भी महान् अभागा है। वह अपने समग्र जीवन को बर्बाद करता है और न जाने कितनी पीढ़ियो की प्रतिष्ठा का लोप करता है।

जिस कुल मे ऊँचा आचार, विचार और उच्चार हो, वही ऊँचा कुल कहलाता है। ऐसे कुल मे जन्म लेकर भी जो नीच आचरण करता है, उसके लिए कोई उपयुक्त शब्द नही है!

पिता और पुत्र को तथा सास और बहू को तथा अन्य कुटुम्बी जनो को आपस मे किस प्रकार बोलना चाहिए, यह समझ लेना भी एक महत्त्वपूर्ण वात है। कुटुम्बी जनों के पारस्परिक व्यवहार पर ही जीवन की शान्ति निर्भर है। जिस कुटुम्ब के सदस्य आपस मे मिल-जुल कर रहते हैं, प्रेमपूर्वक वर्त्ताव करते हैं, वह कुटुम्ब वहुत सुखी होता है। उसमे शान्ति सन्तोष का सचार होता रहता है। अगर उसमें धन की कमी हो तो भी वे दुखी नही होते। इसके विपरीत जिस परिवार मे कलह का वाजार गर्म रहता है, प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को दुश्मन की निगाह से देखता है, आपस मे प्रेमभाव नही होता, वह परिवार धन-धान्य से समृद्ध होने पर भी सुख-शान्ति का उपभोग नही कर सकता। गृहस्थजीवन की सुख-शान्ति का मूल मन्त्र कुटुम्बी जनो का पारस्परिक स्नेहमय सद्व्यवहार ही है। सास अगर बहू को

अपने कुल का चन्द्रमा कहती है तो बहू कहती है--माँ जी ! आप तो हमारे माथे का छत्र है । इसके विपरीत सास अगर बहू को कुलच्छिनी बतलाती है तो बहू, सास को डाकिन और (चुडैल) कहती है । अगर तुम गृहस्थ हो और गृहस्थ ही रहना चाहते हो तो पारिवारिक सुख-शान्ति की मूलभूत बातो पर विचार करो । तुम्हारा पारिवारिक जीवन सुखपूर्ण और शान्तिमय होगा तो धर्म-कर्म की ओर भी चित्त जायगा । अगर चित्त मे सदा क्षोभ ही क्षोभ बना रहा, घर कलह का अड्डा बना रहा तो धर्म की ओर मन प्रेरित नही होगा । इह लोक भी बिगड़ेगा और परलोक भी बिगडेगा । अतएव गृहस्थी चलाना सीखो । गृहस्थ के भी कुछ नियम होते हैं, कुछ मर्यादाएँ होती है ।

जो गृहस्थ विवेकवान् है, वह अपने परिवार को स्वर्गोपम बना लेता है । विवेकविकल गृहस्थ उसे नरक बना डालता है । इस प्रकार अपनी गिरस्ती को स्वर्ग या नरक बना लेना तुम्हारे ही हाथ की बात है । अगर चाहते हो कि हमारा परिवार स्वर्गोपम बन जाय तो विवेक के पुण्यमय प्रकाश को सदैव अपने नेत्रो के समक्ष रक्खो । स्वय सुसंस्कारी बनो, ज्ञान और सदाचार का पालन करो । तुम्हारा अनुकरण करके दूसरे भी वैसे ही बन जाएँगे । ज्ञान और सदाचार के बिना कही भी कल्याण नही है ।

यतना-विवेक की महिमा शास्त्रो में वर्णन की गई है । अनेक उदाहरण दे-देकर विवेक और दया की शिक्षा दी गई है । देखो, खरगोश की दया करने से हाथी का उद्धार हो गया । कबूतर की रक्षा करने से राजा मेघरथ को सोलहवे तीर्थङ्कर का पद प्राप्त हुआ । धर्मरुचि अनगार ने दया को कितना महत्त्व

प्रदान किया था ? कीड़ियो की प्राणरक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राणों का भी मोह नही किया । श्री अरिष्टनेमि भगवान् ने पशुओं की करुणा से प्रेरित होकर राजीमति का परित्याग कर दिया । इसलिए भाइयो ! दया के स्वरूप को समझो और दयामय ही व्यवहार करो ! दया, करुणा, यतना, रक्षा, विवेक आदि किसी भी नाम से कहो, बात एक ही है । जिसने दया की, वह तर गया । अगर तुम ससार कान्तार से बाहर निकलना चाहते हो तो दया का आश्रय लो ।

एक आदमी कहता है—'फलां साहब बड़े अच्छे हैं और खूब पैसे वाले हैं ।' दूसरा कहता है—'पैसे वाले हुए तो क्या हुआ ? उन्हे बोलने का तो तमीज ही नही है ।' यह लो, बोलने के अविवेक ने उसकी प्रशंसा पर पानी फेर दिया ! भाइयो ! 'वचने का दरिद्रता !' अरे, बोलने मे क्यो दरिद्रता दिखलाते हो ? मीठे बोल बोलने से तुम्हारा क्या खर्च हो जायगा ? इससे तो उलटी तुम्हारी प्रशसा ही होगी और बदले मे तुम्हे भी मीठे बोल सुनने को मिलेगे ।

कोई व्यक्ति तुम्हारे द्वार पर आया । 'आइये, पधारिये, साहब !' कह कर तुमने उसका स्वागत किया । ऐसा करने में तुम्हारी क्या हानि हो गई ? हानि कुछ भी नही हुई, बल्कि लाभ हुआ । तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ी, आगन्तुक के हृदय में तुम्हारे प्रति आदर का भाव जाग उठा, तुम्हारा सौजन्य प्रकाशित हुआ और तुम जब उसके द्वार पर जाओगे तो आदर पाओगे । इसके विरुद्ध अगर तुम उसके आने पर गूंगे की तरह बैठे रहे और आगत का स्वागत करने के लिए एक भी शब्द मुँह से न बोल सके तो तुम्हें

क्या लाभ हो गया ? तुम उसकी अप्रीति और अनादर के ही पात्र बनोगे ।

कहने का आशय यह है कि जीवन मे पग-पग पर विवेक की आवश्यकता है । विवेक के बिना जीवन सुखमय, शान्तिमय और सन्तोषमय कदापि नही बन सकता । चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ हो, विवेक प्रत्येक के लिए अनिवार्य है । जो विवेकशील होगा वही साधुत्व का पालन कर सकेगा । मूर्ख क्या साधुपना पालेगा ? साधुपना तो बुद्धिमान् और विवकवान् का है । कई लोग साधुपन को तमाशा समझते हैं । पर उन्होने साधुता के वास्तविक स्वरूप को समझा नही है ।

'ज' और 'न' इन दो अक्षरो के लिखने से 'जन' शब्द बनता है । 'जन' मे जब दो मात्राए लगाई जाती हैं तो 'जन' से 'जैन' शब्द बनता है । आप जानते हैं कि एक मात्रा को हजम करने मे भी कितना कष्ट होता है और कितनी शक्ति की आवश्यकता होती है ? हीरे की खरड, मोती का चूरा आदि मात्राएँ कहलाती है । ऐसी एक मात्रा को हजम करने के लिए कितना ही मक्खन और घी खाना पडता है । यदि उस पर यह तरावट की चीजे न खाई जाएँ तो शरीर को हानि पहुँचती है । ऐसी स्थिति मे दो मात्राओ को हजम करने के लिए क्या कम सामर्थ्य चाहिये ? 'जन' मे ज्ञान और चारित्र की दो मात्राएँ जब लगती हैं तब उस को 'जैन' पद प्राप्त होता है ।

आपने कबूतर को देखा होगा । उसके अगर पर (पङ्ख) न हो या एक पर हो तो क्या वह उड़ सकता है ? नही । दो पर

होने पर ही वह यथेष्ट उड़ान भर सकता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य को ज्ञान और चारित्र रूपी दो पङ्ख प्राप्त हो जाते हैं, वही इच्छानुसार ऊपर उठ सकता है और वहा लोक के अग्रभाग तक पहुँच सकता है।

आप जानते हैं कि दही मे से मक्खन निकलता है । मगर क्या वह यो ही निकल आता है ?

कोरी-कोरी मटकी में दही रे जमाया ।
माखन नहीं निकसे जिया बिन घुमाये से ॥

कोरी मटकी मे दही जमाया, मगर उसे निकालने के लिए विशेष प्रकार का प्रयास करना पडता है। मथानी मे लिपटे हुए रस्से के दोनो सिरो को दोनो हाथो से पकडना पडता है और दही को मथना पडता है और मेहनत करनी पडती है, तब कहो मक्खन निकलता है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की साधना के साथ जब तपस्या की जाती है और पराक्रम फोड़ा जाता है, तब केवलज्ञान का मक्खन हाथ आता है।

जैसे रे सांठा लिया हाथ में,
रस नही निकसे जिया बिन चुसे से ॥

हाथ मे साठा पकड़ कर बैठे रहो और उसके रस से मुँह मीठा करना चाहो तो क्या ऐसा होना सम्भव है ? नही। साठे को चूसना पड़ेगा। चूसे विना रस का आस्वादन नही किया जा सकता।

जैसे रे घुंघरू पहिर पांवन में,
राग नही निकसे जिया बिन ठुमके से ॥

पैरो मे घुंघरू पहन कर कोई बैठ जाता है और कहता है—अरे, इनमे से छम-छम आवाज क्यो नही निकलती ? मगर आवाज निकलेगी कैसे ? उठ कर ठुमक-ठुमक करने पर ही तो छम-छम होगी ! इसी प्रकार आत्मा को ज्ञान और चारित्र में प्रयास किये बिना मुक्ति प्राप्त नही हो सकती ।

जैसे रे फूल लिया हाथन में ।
सुगंध नही आवे जिया विन सूंघे से ॥

गुलाब का फूल हाथ मे लिया, किन्तु सूंघने पर ही तो नाम मे वासना घुसेगी । उसी प्रकार मेहनत किये बिना केवल-ज्ञान कैसे मिल सकता है ?

कर्म नही कटे जिया बिन गुण गाये से ।
क्यों भटके रे भोला तेरा प्रभु तू ही है ॥

भाइयो ! भगवान् का नाम लिये बिना पाप दूर नहीं होंगे । भगवान् का भजन करोगे तो भटकने की कोई आवश्यकता नही रहेगी । फिर तो तुम स्वयं भगवान् बन जाओगे ।

कहाँ तक कहूँ आपसे । आपके सामने एक ही मार्ग है—विद्या और चारित्र का । यह स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थान का वर्णन है । यहाँ सर्वोत्कृष्ट आत्म कल्याण का मार्ग बतलाया गया

है। इसी मार्ग पर चल कर अनन्त आत्माओं ने अपना अनुपम कल्याण साधन किया है और भविष्य में भी जिनका कल्याण होने वाला है, इसी मार्ग पर चलने से होगा। इसके अतिरिक्त आत्म कल्याण का और कोई मार्ग नही है।

भविष्यदत्त–चरित:—

भविष्यदत्त के जीवन चरित से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। भविष्यदत्त ने अब तक जो उन्नति की और आगे जो भी उन्नति करेगा, उसके मूल में भी ज्ञान और चारित्र ही है।

भविष्यदत्त ने विमल बुद्धि मुनिराज के समक्ष खड़े होकर विनयपूर्वक प्रश्न किया कि मैं क्या करणी करके आया हूँ? मुनिराज अवधिज्ञान के धारक थे। उन्होने अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर भविष्यदत्त के पूर्व वृत्तान्त को जान लिया और तत्पश्चात् इस प्रकार प्रश्न का समाधान किया:—

ऐरावत क्षेत्र मे अरिकुल नामक नगर था। उस नगर के प्रधान का नाम विजोयर था उसकी पुत्री कृतसेना थी। प्रधान ने विलमित्र नामक एक युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। प्रधान का यह जामाता दुर्व्यसनी था। उसे अपनी जाति और समाज का भी खयाल न रहा। शास्त्र मे सात कुव्यसन बतलाये गये हैं। किसी व्यक्ति मे जब एक व्यसन पूरी तरह घर कर जाता है तो वह दूसरे व्यसनो का शिकार हुए बिना नही रहता। विलमित्र का यही हाल हुआ। वह सातो कुव्यसनों का शिकार हो गया। प्रधान की कन्या कृतसेना अपने पति की

हालत देख-देख कर अत्यन्त दु:ख का अनुभव करती थी। वह अपने पति को दुर्व्यसनो से बचा कर सत्पथ पर लाने का जी-जान से प्रयत्न करती थी, मगर सफल मनोरथ नही हो सकी।

एक बार की बात है। कृतसेना ने अपने पति को विनय के साथ समझाने का प्रयत्न किया। उसकी हितावह और विनम्रता-युक्त बात भी विलमित्र को सहन नही हो सकी और उसने कृत-सेना पर बहुत क्रोध किया। कृतसेना को रुलाई आ गई। परन्तु वह सच्ची पतिव्रता स्त्री थी। वह पति को हृदय से पवित्र-चरित्र देखना चाहती थी। अतएव उसने अच्छा खान-पीना त्याग दिया। गांव के बाहर रहे हुए एक तापस के पास जाकर वह उसकी सेवा करने लगी।

उसी नगर में धनदत्त नामक एक वणिक् रहता था। धरणेन्द्रा उसकी पत्नी का नाम था। धनदत्त का पुत्र धनमित्र जब विवाह के योग्य हुआ तो किसी दूसरे वणिक् की कन्या के साथ उसका विवाह हो गया। धनमित्र भी उसी तापस की सेवा में जाया करता था।

सयोग की बात! कभी-कभी कृतसेना और धनमित्र दोनो का तापस के स्थान पर सम्पर्क हो जाया करता था। धीरे-धीरे धनमित्र के सुन्दर रूप को देख कर कृतसेना का चित्त उसकी ओर आकृष्ट हो गया। उसकी छवि देखती-देखती कृतसेना कामान्ध हो जाती है। उसके मन मे काम का विष व्याप्त हो जाता है।

भाइयो! यह काम-विकार अत्यन्त प्रबल है। इसके चंगुल

में फँसने से वच निकलना आसान नही है। बडे-वडे तपस्वी और बड़े-बड़े विद्वान् भी इसके वशीभूत हो जाते हैं। कृतसेना विवेकवती थी और अपने पति को दुर्व्यसनो से मुक्त करने की इच्छा करती थी, फिर भी उसका चित्त चलायमान हो गया।

एक दिन तापस के यहां फिर दोनो का मिलान हो गया। धनमित्र जब तापस की उपासना करके लौटने लगा तो कृतसेना भी उसके पीछे-पीछे जाने लगी। धनमित्र अपने घर पहुँचा। उसकी भावना तनिक भी दूषित नही थी और कृतसेना के चित्त के विकार का उसे पता नही था। वह अपने घर मे घुस गया और भीतर जाकर पलग पर लेट गया। कृतसेना भी उसके द्वार पर पहुँची। द्वार पर धन मित्र की पत्नी मिली। उसने कृतसेना को दीवान की लड़की समझ कर उसका सत्कार किया और उसे उदास देख कर पूछा—आज आप शोकातुर क्यों मालूम होती हैं? क्या आपकी सासू नाराज हुई हैं या पति नाराज हुए हैं?

कृतसेना ने कहा—तेरे पति अति मतिमोहन हैं? वे कहाँ हैं?

गृहिणी बोली—मेरे पति भीतर हैं। आपकी बातचीत करनी हो तो भीतर पधारिये।

गृहिणी ने सीधे-सादे ढग से जो उत्तर दिया, कृतसेना पर विचित्र प्रभाव पडा। वह यकायक चौंक पड़ी और सोचने लगी—हाय! मेरी बुद्धि क्यो बिगड़ गई है? मैं क्यो अपने अनमोल धर्म रूपी धन को लुटाने के लिए तैयार हुई हूँ? थोड़ी-सी

जिन्दगी के लिए, अल्प सुख के वास्ते मैं पापाचार के सेवन का विचार कर रही हूँ। मुझे धिक्कार है! मै क्यो पथभ्रष्ट हुई? मेरे मन मे मोह-विकार क्यो उत्पन्न हुआ? इस प्रकार अपने आपको धिक्कारती हुई कृतसेना अपने घर लौट आई। उसने सिर्फ इतना कहा—तेरे पति आज से मेरे धर्मभाई है।

अवसर पाकर कृतसेना ने अपने पिता से कहा—धनमित्र मेरा धर्मभ्राता है। वह सुन्दर, सदाचारी, धर्मनिष्ठ, न्यायशील और उदार हैं। नगरसेठ होने की सभी योग्यता उसमे मौजूद है। अगर आप उसे नगरसेठ का पद प्रदान करे तो नगर का सौभाग्य होगा।

दीवान ने प्रसन्न होकर धनमित्र को अपने पास बुलाया और अपने साथ ले जाकर राजा को उसका परिचय दिया। राजा ने धनमित्र के व्यवहार और गुणो से सन्तुष्ट होकर उसे नगरसेठ का पद प्रदान किया।

कृतसेना के मन मे पहले जो कुत्सित विचार हुए थे, उन्हे उसने छिपाया नही। वे विचार परिवार वालो पर प्रकट हो गए और अब जो शुद्ध विचार उत्पन्न हुए थे, वे भी उनको मालूम हो गये।

इस प्रकार सब आनन्द और सन्तोष के साथ रहने लगे। भाइयों! कभी-कभी चित्त मे विकार उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु धर्मप्रेमी जनो का कर्त्तव्य है कि वे कृतसेना की तरह उन्हे बाहर निकाल फेंके और शीघ्र ही निर्विकार दशा को प्राप्त हों।

१०-११-४८ }



छलिया जीव !

स्तुतिः—

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टाः—
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवन् ! कोई किसी देव को मानता है और कोई किसी देवता की उपासना करता है। लोग जब उनकी तरफ देखते हैं तो

ऐसा लगने लगता है कि शायद यह भी तारने वाले होगे। जिनकी सेवा मे हजारो आदमी जाते हैं, उनके विषय मे यह खयाल हो जाना स्वाभाविक है कि इनके पास भी कुछ न कुछ विशेषता होगी। किन्तु हे प्रभो ! जो आपके परम वीतराग स्वरूप को देख लेता है और परम कल्याणकारिणी वाणी को श्रवण कर लेता है, उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। उसकी अन्तरात्मा में व्याप्त सभी सशय दूर हो जाते हैं। उसे आपके प्रति ऐसी प्रगाढ प्रीति और श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है कि इस जन्म मे तो क्या, जन्मान्तर मे भी उसे कोई डिगा नही सकता।

जो लोग ससार के राग–द्वेष से दूषित देवी-देवताओ के सामने मस्तक रगडने के बाद आपकी सेवा मे आता है और आपकी उपासना करता है, वह यही सोचने लगता है कि–अच्छा हुआ, पहले दूसरे देवो के साथ मेरा पाला पड गया। इससे मुझे तुलना करने का अवसर तो मिल गया ! जिसने पीतल देखने के पश्चात् सोना देखा है वह पीतल और सोने की तुलना करके सोने की विशिष्टता को समझ सकता है। जिसने जूगनू के प्रकाश को जान लिया है और फिर सूर्य के प्रकाश को समझा है, वह दोनों की अच्छी तुलना कर सकता है। इसी प्रकार रागी और वीतराग दोनो प्रकार के देवो को देखने वाला वीतराग भगवान् की महिमा को अधिक अच्छी तरह समझ सकता है। अतएव आचार्य महाराज कहते हैं कि रागी देवो को देखना एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। उसी की बदौलत वीतराग भगवान् पर प्रगाढ आस्था उत्पन्न होती है–ऐसी आस्था जो जन्मान्तर मे भी भग नही हो सकती ! ऐसे ही वीतराग भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा वार–वार नमस्कार हो।

भाइयों ! प्रभु के प्रति जब प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो आत्मा मे उसके संस्कार खूब गहरे जम जाते हैं । संस्कारों की गहराई के कारण आत्मा जब परलोक में जाती है, नवीन जन्म धारण करती है, तब भी उसमे वह सस्कार बना रहता है। जो लोग बालको के मानस के ज्ञाता है, वे भलीभांति जानते हैं कि एक ही उम्र के और एक ही सरीखे वातावरण में पाले-पोसे जाने वाले बालको मे भी अनेक प्रकार की विषमताएँ होती हैं । उनकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है, पसन्दगी अलग-अलग होती है, विचारो में पार्थक्य होता है और आचार मे भी भिन्नता होती है। विद्वान् लोग इस विसदृशता का जब कोई ऐहिक कारण नही पाते तो अन्त मे यही स्वीकार करते हैं कि पूर्वजन्म के सस्कारो की भिन्नता ही इस जन्म की रुचि आदि की भिन्नता के कारण है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि प्राणी मात्र पूर्वजन्म के संस्कारों के साथ इस जन्म मे आती है—कोरा नही आता । वास्तव में पूर्वजन्म के प्रबल सस्कार आगे के जन्मो को प्रभावित करते है। शास्त्रों मे इस सच्चाई को सिद्ध करने वाले सैकड़ो ही नही, हजारो उदाहरण मौजूद हैं। ऐसी स्थिति मे भगवान् ऋषभदेवजी के ऊपर अगर प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाय तो वह जन्मान्तर मे भी नही जा सकती है।

भगवान् की वाणी पर एक बार निर्मल श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो वह प्राय: जाती नही है । कदाचित् उसमे रूपान्तर होता है तो भी वह स्थायी नही होता । कुछ समय के पश्चात् श्रद्धा का रूप फिर ज्यों का त्यों हो जाता है । एक बार श्रद्धा आई और समझ लो कि उस जीवन का निस्तार हो गया। वह निश्चित रूप से मोक्षगामी हो गया।

व्रत, प्रत्याख्यान, त्याग आदि इसी जन्म के लिए होता है। जैसे श्रावक ने बारह व्रतों को धारण किया अथवा साधुपना ले लिया तो वह कब तक के लिए है ? जब तक यह शरीर विद्यमान है तभी तक के लिए वह सब आचार है । इस शरीर से जीव निकल जाने के पश्चात् न त्याग रहता है, न व्रत रहते हैं, न प्रत्याख्यान रहता है और न साधुपना रहता है। क्योंकि साधु या श्रावक जो भी व्रत-प्रत्याख्यान करता है वह 'जावज्जीव' अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिए करता है, कोई प्रत्याख्यान कम समय के लिए तो हो सकता है, परन्तु जीवनकाल से अधिक—आगे—के लिए नही हो सकता अभी कोई भाई यदि हरितकाय का त्याग करे, रात्रि भोजन का त्याग करे या शीलव्रत को धारण करे तो जब तक यह जीवन है, तभी तक के लिए वह त्याग समझा जायगा। इसी प्रकार की धारणा के साथ त्याग किया जाता है और इसी धारणा से त्याग कराया जाता है। तात्पर्य यह है कि कोई भी त्याग या प्रत्याख्यान क्यो न हो, मौजूदा जीवन से आगे के लिए, जन्मातर के लिए, नही होता मगर श्रद्धा के सम्बन्ध मे यह बात नही है। श्रद्धा तो जन्म-जन्मान्तर के लिए होती है। इस प्रकार श्रद्धा त्याग से भी बडी है और केवलज्ञान से भी बडी है। श्रद्धा होने पर ही सच्चा त्याग एव केवलज्ञान हो सकता है। अतएव श्रद्धा उनका मूल है। इसीलिए शास्त्रो मे श्रद्धा की बड़ी महिमा गाई गई है। कहा है: —

सद्धा परम दुल्लहा ।

भाइयो ! यह दुर्लभ श्रद्धा जिसे प्राप्त है, उसका दिया हुआ दान, पाला हुआ शील, की हुई तपस्या और उपार्जन किया हुआ

जितनी आयु लेकर आया था, वह समाप्त हो गई थी। मगर देखना यह है कि उस जीव ने अल्प आयु किस कारण से पाई थी ? वह छोटी सी उम्र मे ही क्यों मर गया ?

भगवान् महावीर स्वामी, गौतम से कहते हैं—हे गौतम ! कोई जीव छहकाय के जीवो का आरम्भ करता है, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, और वनस्पति की हिंसा करता है, हरे वृक्ष कटवाता है, अपने ऐश-आराम के लिए या धर्म समझ कर अथवा अर्थोपार्जन के लिए अथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए हिंसा करते हैं, कीडे-मकोडे, जू, लीख, मक्खी, मच्छर आदि प्राणियों की हिंसा करते हैं, मछलियाँ पकड़-पकड़ कर खा जाते हैं, गायो को कत्ल करके खा जाते हैं, भैसो पाडों को खा जाते है, अण्डे चूसते हैं और न जाने ऐसे-ऐसे कितने पाप करते है।

प्रश्न किया जा सकता है कि संसार के हजारों लाखो आदमी ऐसे पाप करते हैं तो क्या सभी नरक मे जाएंगे ? साधु तो बस, बात-बात मे नरक का फतवा दे डालते हैं। ऐसा कहने वाले लोगो को सोचना चाहिए कि एक-एक बम गिरने से लाखो आदमियों का एक साथ संहार क्यों हो जाता है ? क्या किसी विशिष्ट अन्तरग कारण के विना ही यह ऐसी विशिष्ट घटना का होना सम्भव है ? वास्तव मे जिसने दूसरे जीवों की आयु का छेदन किया है, उन्हे अल्प आयु मे मारा है, वह खुद भी अल्पायुष्क होकर जन्म लेता है और समय मे ही मर जाता है।

जिस कैदी की कैद की मियाद खत्म हो चुकी हो, जेलर उसे एक भी मिनिट ज्यादा नहीं रख सकता। इसी प्रकार आयु के

समाप्त हो जाने पर जीव एक पल पर भी जीवित नही रह सकता। चाहे कोई तावीज बांधे, चाहे भैरो–भवानी के सामने मत्था रगड़े या और कोई उपाय करे, मगर आयु समाप्त होने पर उस जीव को शरीर का त्याग करना पड़ेगा। कोई एक पल भी फिर नहीं रह सकता। आयु पूर्ण हुई कि बस राम-राम सत्य है !

तात्पर्य यह है कि षट् काय की हिंसा करने वाला अल्प आयुष्य का बन्ध करता है।

दूसरे, जो बहुत झूठ बोलता है, झूठी गवाही देता है, साक्षात् किये को भी नही किया हुआ कहता है और लट्ठ पडने पर किया कबूल करता है, वह भी अल्प आयु बांधता है। बहुत से लोग ऐसे होते है कि जहाँ पानी बतलाते हैं वहाँ कीचड़ भी नही मिलता ! वे अव्वल दर्जे के झूठे होते हैं। आटे की चुटकी भी नही और नमक की रोटी बनाते हैं ! ऐसे-ऐसे मिथ्यावादी भी अल्प आयु मे ही मृत्यु के ग्रास होते हैं।

इधर बीदणी ब्याह कर लाया और खुशी से नाच उठा और ज्यों ही रात हुई कि चल बसा !

बीदणी मन मे सोचती है कि मैं कैसी भाग्यशालिनी हूँ जो ऐसे अच्छे बीद मुझे मिले है ! और दूसरे दिन ही उसे अपने हाथो की चूड़ियाँ फोडनी पडती हैं ! यह सब दारुण दशा क्यों होती है ? इसका कारण है झूठ बोलना। अतएव गाँठ बाँध लो कि जो जितना झूठ बोलेगा, उसे उतनी ही कम आयु मिलेगी और फलस्वरूप उतनी ही जल्दी उसे मरना पड़ेगा।

एक नवयुवक विलायत जाकर परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वापिस लौटा। कुटुम्बीजन फूले न समाये। तरह-तरह के मन्सूबे बाँधने लगे। सोचने लगे कि अब तीन हजार मासिक की नौकरी मिलेगी। सारे परिवार के दिन फिर जाएँगे। धन भी बढ जायगा और प्रतिष्ठा भी बढ़ जायगी। नवयुवक रात्रि मे बिस्तर पर सोया और हृदय की गति बन्द हो गई सो फिर उठ ही नही सका! सब की आशाओं पर तुषारपात हो गया। कहो, यह किसका नतीजा है? झूठ बोलने का।

एक मनुष्य झूठ बोला और दूसरे ने कहा—तूने बहुत अच्छा किया। यार, क्या तरकीब से जवाब दिया! तूने सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बना दिया! शाबास, क्या शिकार खेली है! इस प्रकार कह कर जो असत्यभाषी की सराहना और अनुमोदना करते है, वे भी असत्य भाषण के पाप के भागी होते हैं। परभव मे अल्प आयु मे उसकी मृत्यु होगी और अपने कुटुम्बी जनो को रोता-बिलखता छोड कर वह असमय में ही काल के गाल मे चला जायगा। जिन लोगो ने पूर्व भव में उसके झूठ बोलने के सराहना की थी, वे इस भव मे उसके कुटुम्बी के रूप मे जन्मते हैं और उसकी मृत्यु होने पर दुखी होते हैं। इस प्रकार अल्प-आयु बाँधने का दूसरा कारण असत्य भाषण करना है।

तीसरा कारण साधु-साध्वी को अपथ्य और अशुद्ध आहार-पानी देना है। शुद्ध सयम का पालन करने वाले और निर्दोष भिक्षा लेकर जीवनयात्रा का निर्वाह करने वाले साधु को अथवा साध्वी को जो लोग दूषित आहार या पानी देते हैं, वे भी अल्पायुष्क होते हैं।

भाइयो ! इन तीन कारणो से जीव को अल्प आयु की प्राप्ति होती है और तीन कारणो से दीर्घ आयुष्क प्राप्त होता है। वे तीन कारण इनसे उलटे समझने चाहिए। यथा - हिंसा न करना, मिथ्याभाषण न करना और साधु-साध्वी को सूझता और पथ्यकारी आहार-पानी प्रदान करना। इन तीन कारणो का सेवन करने वाला जीव लम्बी आयु पाने के साथ-साथ नीरोग शरीर भी पाता है। मरुदेवी माता को देखो। उन्हे कभी आर्त्त-ध्यान करने का अवसर नही आया, कभी किसी प्रकार का दुःख सहन करने का प्रसग उपस्थित नही हुआ। ऐसा नही हुआ कि आज घर मे यह चीज नही है या उस चीज की जरूरत है मगर मिलती नही। वह जीव भरे भडार पाता है। सब इच्छित पदार्थ उसे सुलभ होते हैं। उदाहरण के लिए महाराणा भोपालसिंहजी को ले लो। एक वार हम उदयपुर गये तो महाराणा मुझे एक वस्त्र देने लगे। मैने उस वस्त्र की कीमत पूछी तो उन्होने कहा - यह टुकडा करीव ३००) रुपये का होगा ! मैंने उस टुकडे को लेने की अनिच्छा प्रकट की। कहा—इतनी ऊँची कीमत का वस्त्र मुझे नही चाहिए। जगल मे चोरो ने पीछा किया तो क्या करेंगे ? हम तो साधारण ही वस्त्र उपयोग मे लेते हैं। तव महाराणा कहने लगे—मेरे पास एक लाख रुपये का कपड़ा मौजूद है। आपको जो पसन्द हो सो ले लीजिए।

कहने का आशय यह है कि हिंसा आदि से बचने वाला ऐसा पुण्य लेकर आता है कि उसे किसी भी वस्तु का अभाव नही होता। समस्त इष्ट पदार्थ उसके लिए सुलभ होते हैं।

आराम दोगे तो आराम पाओगे, तकलीफ दोगे तो

तकलीफ पाओगे। जैसा करोगे वैसा ही फल पाओगे।

आखिर क्या चाहता है तू ? आराम ? तो दूसरो को आराम पहुँचा। किसी को तकलीफ मत दे, झूठ मत बोल और साधु-सन्तों को शुद्ध आहार-पानी, औषध-भेषज आदि आवश्यक वस्तुएँ दे, अशुद्ध मत दे। ऐसा करने से तेरा अगला जीवन सुखमय बनेगा। तुझे किसी भी प्रकार के अभाव का सामना नही करना पडेगा, असमय मृत्यु का शिकार न होगा और सभी प्रकार की अनुकूलताएँ उपलब्ध होगी।

एक बार विहार करते-करते धुन बँधी तो एक भजन बना कर तैयार किया था। वह इस प्रकार है–

जाओ जाओ ऐ चेतन तेरा, कौन करे विश्वास ॥टेर॥
मै तो तेरी कभी न मानूँ, तू पूरा है छलिया।
जो तेरे से प्रेम करे तू उससे भी नही टलिया ॥ १ ॥

इस जीव से कहा गया है कि जाओ, जाओ, कौन तुम्हारे ऊपर विश्वास करे ? तेरी बात मैं हर्गिज मानने वाला नही हूँ। तू छल करने वाला है, धूर्त्त है। जिसने तुझ पर ऐहसान किया, तुझे दूध पिलाया, छाती से लगाया, स्वय सैकडो कष्ट सहन करके तुझे सुखी रखने का सदा प्रयास किया, उसी माता की छाती कुटवा-कुटवा कर तू चला गया ! जिस पिता ने तुझे अपना सर्वस्व समझा और तुझे सुखी बनाने का भरसक प्रयत्न किया, जिसने लाड़-प्यार से पाला-पोसा, उसी का सर्वस्व छीन कर उसे दुखी करके तू चला गया ! अरे तू अपने माता-पिता से भी न चूका। ऐसी स्थिति मे कौन तुझ पर भरोसा करे ?

घर बनवाया रहा अधूरा लेन देन भी बाकी ।
घर में बूढा बाबा बैठा, उसकी कान न राखी ।

कहता है--पुराना मकान हमें पसद नही है । अतएव लाखों की लागत की पुरानी हवेली तुडवा दो और नये फैशन की बिल्डिंग बनवाना शुरू किया । घर मे अस्सी वर्ष का डोकरा बैठा है । वह बैठा रहा और हवेली अधूरी रह गई और वह अचानक चल दिया ! कहो भाई, जिसने अस्सी वर्ष के बूढ़े की घोर मानसिक पीडा का भी तनिक विचार न किया, उसके समान निठुर और बेईमान कौन होगा ?

सुन्दर नार देख कर ब्याया, कंगन खुल नही पाया ।
गया स्नान करने को ऐसा, फिर पीछा नहीं आया ॥

भाइयो ! आज का नवयुवक कहता है--हम यूं विवाह नही करेंगे । हमारे लिए लडकी का फोटो मगाओ । फोटो आता है तो आखे गडा-गडा कर उसे देखता है और अन्त में कहता है-इसकी तो नाक बैठी हुई है ! या इसके कान अच्छे नही है । इसके दातो की पक्ति अच्छी नही है । इस प्रकार कई लडकियों के फोटो मगवाये गए । तब कही कुँवरसाहब ने एक लडकी को पसद किया । बाप ने हजारो रुपये खर्च किये और धूमधाम से विवाह हुआ । कितने ही नखरे किये । बीद बन कर बीदणी को ब्याह लाया । दोनो एक दूसरे को देख कर राज़ी हुए । विवाह के पश्चात् कंकण खुलने का समय आया तब कुँवर साहब बोले--मैं स्नान करके आता हूँ । सीधा कुए पर स्नान करने के लिए

गया और ज्योंही कुए में झाँका कि पैर फिसल गया ! कुए के भीतर गडप हो गया । नवविवाहिता पत्नी ने जाते की पीठ देखी, किन्तु आते का मुँह नहीं देख पाया । बस, फिर क्या है ? सारे परिवार मे कुहराम मच गया । कोई छाती पीटता है, कोई सिर धुनता है, कोई धाड़ पाड़ कर रो रहा है । इसीलिए कहा गया है कि ऐ चेतन ! तू बड़ा धोखेबाज है । तेरा विश्वास कौन करे ? बुद्धिमान् तेरा विश्वास नही करते । अरे, कुए मे गिरना था तो यह सब अड़ंगा क्यो किया ?

अनन्त मात-पिता कर लीने हंसा-हंसा रुलवाया ।
इसी तरह से पुण्योदय से, मानव का तन पाया ॥

हिन्दुओं और मुसलमानो का झगड़ा हुआ तो एक आदमी ने विचार किया—अपने लड़के को इसके ससुराल के गांव मे भेज दूँ तो वहां सुरक्षित रहेगा । लड़का वहां जा पहुँचा और जब नदी मे स्नान करने गया तो वहीं डूब कर मर गया । अरे जीव, क्या विश्वास है तेरा ? तू अनन्त माता-पिता बना चुका है और उन सब को अनन्त-अनन्त बार रुला चुका है । न जाने कितनो को रुलाने के बाद तू ने यह मनुष्य जन्म पाया है ?

यहां चन्द रोज के खातिर, बनाया बाग मे बंगला ।
कोई पूछे तो यों कहते, मकां यह तो हमारा है ॥

अरे प्राणी ! तेरी जिन्दगानी कितनी-सी है ? चार दिनों के लिए यहां आया है । यहां आकर तूने बड़ी-बड़ी पदवियां प्राप्त कर लीं । सोने की मोटर द्वार पर खड़ी है । वैभव के झूले मे झूल

रहा है। ऐश्वर्य का पार नही है। घूमने जाने को तैयार है। मगर जरा पानदान लेने को भीतर गया कि रास्ते में पांव फिसल गया। धड़ाम से धरती पर गिरा। मर्मस्थान पर चोट आ गई और सदा के लिए सो गया। खेल खत्म हो गया। बगला यों ही पड़ा है। जिसने कहा था अभिमान के साथ कि यह बंगला हमारा है, वह चला गया और बंगला आज भी वही का वही खड़ा है। वह अपने साथ बंगले को नही ले जा सका और न बंगला उसके साथ गया! फिर किस अर्थ में बंगला उसका था? क्या मोही जीव की कल्पना नही है?

यह धन तेरा यह धन मेरा, मैं किसका रखवाला हूँ।
मर कर गया कहां पर तेरा खुला पड़ा है ताला।

जीव बडे अभिमान के साथ कहता है—यह मेरा धन है। किसकी हिम्मत है जो इसकी ओर आंख उठा कर देख सके? देखने वाले की आंखे फोड दूंगा? कौन इसे हाथ लगा सकता है? जो हाथ लगाना चाहेगा। उसका हाथ कलम कर दूंगा? और यह घर मेरा है। मैं इसका स्वामी हूँ। किसी को इसकी परछाईं में खडा होने दूं या न होने दूं, मेरी मर्जी! कोई मेरे मकान के सामने खड़ा होगा तो उसकी टांगे तोड़ दूंगा। मैं इसका रखवाला हूँ! ऐसा कहने वाला दिन अस्त होने के बाद उस घर में सो जाता है और सोते-सोते परलोक को प्रयाण कर जाता है। राम नाम सत्य हो जाता है। वह तिजोरियों के ताले भी बन्द नही कर सका! गुलाब बाई उसे याद कर-करके रोती है!

भाइयो! क्या इस कथन मे अतिशयोक्ति है? क्या आये

दिन सैकड़ो घटनाएँ इसी प्रकार की होती नही देखी जाती ? फिर भी लोग अपने तन, धन, भवन आदि का अभिमान करते हैं !

यह घर मेरा है, मैं इसका रखवाला हूँ, इस प्रकार का अभिमान करने वाला पल भर मे ही न जाने किस लोक में चला जाता है और यहाँ मकान सूना और खुला पड़ा रहता है। फिर भले ही कोई उसमे टट्टी जाय या पेशाब करे। अरे मकान के मालिक ! अब जरा आ न ? कहां गया ? अपने घर का अहकार करता था। बड़ा मिजाज करता था। अब अपने घर की रखवाली क्यो नही करता ?

दया दान सत् शील न पाला, प्रभु से प्रेम न लाया।
पापी बन कर पाप कमाया, खाली हाथ सिधाया ॥

जिन्दगी भर न दया की, न दान किया, न शील पाला और न भगवान् का भजन ही किया। किया तो बस, पाप ही पाप का उपार्जन किया। बीडी, सिगरेट, और चिलम के धुएं उड़ाये। रडीबाजी मे पैसा लगाया। इस प्रकार धर्म के लिहाज से खाली हाथ गया ! बीस लाख की सम्पत्ति मौजूद थी। किसी ने प्रेरणा की कि दो-चार हजार परोपकार मे लगाओ तो ललाट पर सिकुड़न आ गई। आँखे लाल हो गई।

न हाथ से कुछ किया और न कुछ करने जोग।
तुलसी इस संसार में, आय हंसाया लोग ॥

\+ \+ \+

दुनिया में आकर यह सीखा, बस यह तेरा यह मेरा है।
जाने के पहले देखा तो, बस चारों ओर अंधेरा है ॥

भाइयो ! यह तेरा है और यह मेरा है, इस प्रकार की भावना मोह के प्रभाव से जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जाती है। इस ज्ञान के लिए किसी शिक्षक या उपदेशक की आवश्यकता नही होती। छोटे-छोटे अबोध कहलाते वाले बालको को भी यह बोध प्राप्त रहता है। मगर मरते समय देखा तो बस, चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त रहता है।

आप ही कहता आप ही सुनता आप बनाता बाते।
चौथमल ने भजन बनाया बदनावर से जाते ॥

भाइयो ! यह जीव आप ही कहता है, आप ही सुनता है और आप ही बाते बनाता है। अधर्म की ओर स्वतः इसकी प्रवृत्ति होती है। अनादिकालीन मोह-ममता के कुसस्कारो के कारण पाप की ओर इसका झुकाव स्वतः ही हो जाता है।

बदनावर से जाते समय यह भजन बनाया गया था। इस भजन का मुख्य आशय यही है कि दुनियाँ का यह खेल झूठा है। मनुष्य का ममत्व और अहकार सब मिथ्या है। ससार का कोई भी पौद्गलिक पदार्थ स्थायी नही है। यहा सभी कुछ विनश्वर है। जब जीवन ही स्थिर नही है तो जीवन के साथ जुड़े हुए अन्य पदार्थ स्थायी किस प्रकार हो सकते हैं ? श्वास पर जिंदगी टिकी है, हृदय की धड़कन पर प्राण निर्भर हैं। किसी भी समय श्वास

बंद हो सकता है और किसी भी क्षण हृदय की धड़कन रुक सकती है। वही इस जीवन की समाप्ति हो जाती है। जीवन समाप्त हुआ नही कि समस्त वैभव, चाहे वह कितना ही विपुल क्यों न हो, पराया हो जाता है। मृत आत्मा के साथ कानी कोड़ी भी नही जाती। अतएव विवेकवान् पुरुष को इस सच्चाई पर विचार करना चाहिए। वह सच्चाई ऐसी नही है कि जिसमे कल्पना या श्रद्धा की आवश्यकता हो। प्रतिदिन ऐसी बातें प्रत्यक्ष देखी जाती है। नित्य इसका अनुभव होता है। अतएव पुण्य के उदय से जो भी सामग्री प्राप्त हुई हो, उसका सदुपयोग करना ज्ञानवान् पुरुषों का कर्त्तव्य है। धन हो या न हो, धर्म का उपार्जन करने मे कोई बाधा नहीं पड़ सकती। तन से सेवा और परोपकार किया जा सकता है, वचन से भी परोपकार किया जा सकता है, परमात्मा के गुणो का गान किया जा सकता है और मन से शुभ भावनाएँ की जा सकती है, प्रभु के गुणो का चिन्तन किया जा सकता है और शास्त्रो का मनन किया जा सकता है। यही जीव की असली पूंजी होगी। इसी पूंजी से परलोक मे आनन्द प्राप्त होगा।

बुद्धिमान् पुरुष को अपने जीवन की अनित्यता समझनी चाहिए। सोचना चाहिए-हे जीव ! जब तू स्वयं ही एक जगह नही रह सकता तो फिर किस पर मुखत्यारी करता है ? और किसको तू अपना मान रहा है ? वास्तव में जो तेरा है उसे तू भूला हुआ है और जो तेरा नही है, उसी को तू अपना मान रहा है। तू अपने सशक्त शरीर का घमण्ड करता है, परन्तु शरीर से बढ़ कर धोखे बाज और कौन है ? तू समझता है कि हम ५०० डंड पेल सकते हैं; किन्तु फूट के दस्त लग जाएँ या अचानक

लकवा मार जाय तो उस शरीर की क्या हालत होती है ? फिर यह भी तो विचार करो कि यह मिजाज किस बल पर है ? मल पर। रेल चले कल से, बदमाश काम ले छल से और शरीर काम करे मल से। जब तक मल शरीर के भीतर है, शरीर मे शक्ति है। सारा मल निकल जाय तो हाथ-पैर भी नही हिल सकते, आंख भी नही खुल सकती ! इस प्रकार जिसकी जिंदगी मल पर निर्भर है, उसे अभिमान करना क्या शोभा देता है ?

हे जीव ! तूने सतो का समागम किया, वीतराग देव की वाणी का श्रवण किया है, धर्म के तत्त्व पर विचार किया है तो 'यह तेरा यह मेरा' का-भाव त्याग दे। तू अपनी असली सम्पत्ति को पहचान। आत्मिक वैभव की खोज कर। वही वैभव वास्तव मे तेरा है। वही तेरे साथ जायगा। वही तेरे काम आएगा। उसी के द्वारा तेरा निस्तार होगा। उसी की प्राप्ति और रक्षा के लिए प्रयत्नशील हो। तू समझता है कि यह पगड़ी तेरी है ? नही, उसे तो भङ्गी ले जायगा ! क्या स्त्री की चूनरी उसकी है ? नही, उसे भङ्गिन ओढ़ कर बाजार मे निकलेगी ! भाई, इन पर-पदार्थों मे स्वत्वबुद्धि तज। यह दुर्विकल्प आत्मा के वैरी हैं, आत्महित मे बाधक हैं, परलोक में दुर्गति के कारण हैं। अतएव हे भव्य ! तू अपने विवेक मे रमण कर। अपने विवेक मे रमण करेगा तो तुझे प्रत्यक्ष शान्ति का अनुभव होने लगेगा। तुझसे अधिक न हो सके तो दान, शील, तप और भावना की ही आराधना कर। पेट के लिए खूब किया है तो ठेठ के लिए भी कुछ कर। कहा भी है:—

ठेठ का कौल तो भूल गया अरु पेट के काज भटकता है।
हराम का काम तो बहुत किया पर साहब का नाम अटकता है॥
कई कूड़ कपट झपट करे लालच पर लोभ लटकता है।
शाहीदीन कहे अकड़े मत प्यारे पकड़ के काल पटकता है।

यह अविवेकी जीव ठेठ का काज भूल गया है और हराम का काम दिल लगा कर रात-दिन किया करता है। सिनेमा मे रुपये खर्च कर देता है पर गरीब को एक पैसा देते हाथ सिकोड़ लेता है! गप्पे मारने मे घन्टो व्यतीत कर देता है परन्तु एक सामायिक करने का समय नही निकाल पाता। मगर याद रखना, थोडे ही दिनो मे मुँह फट जायगा। हाथ और पैर अकड़ जाएँगे। इसलिए समय रहते सावधान हो जा। इस लदाऊ डेरे को स्थायी निवास समझने की भ्रमणा हटा दे। याद रख कि तुझे आगे जाना है। साथ मे कुछ भाता ले जायगा तो सुख पायगा, नही तो दुःख ही दुःख भुगतना पडेगा। उस समय घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। शास्त्र में कहा है—

अद्धाणं तु महंतं जो, अपाहेओ पवज्जइ।
गच्छन्तो सो दुही होई छुहातण्हाए पिडिओ॥
एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ॥
अद्धाणं तु महंतं जो, सपाहेओ पवज्जइ।
गच्छन्तो सो सुही होई, छुहातण्हाविवज्जिओ॥

एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥

—श्री उत्तराध्ययन, १९, १८-२१

अर्थात्—जो पुरुष लम्बे रास्ते में भाता लिए विना चल देता है, वह जाते-जाते भूख-प्यास से पीड़ित होकर बहुत दुखी होता है। इसी प्रकार जो जीव धर्म किये विना ही परलोक को प्रयाण करता है, वह व्याधियों और रोगों से पीड़ित होकर बहुत दुखी होता है।

इसके विपरीत, जो पुरुष लम्बे मार्ग में भाता साथ लेकर चलता है, उसे भूख-प्यास का कष्ट नही भोगना पडता और वह मौज से अपने मार्ग को तय करता है। इसी प्रकार जो जीव धर्म का आचरण करके परलोक-गमन करता है, वह सुखी होता है। वह कर्महीन और सब प्रकार की वेदनाओ से रहित होता है।

भाइयों! सर्वज्ञ भगवान् ने जो उपदेश दिया है और शास्त्रो मे जिसका सग्रह किया गया है, वही बात मैं अपने शब्दो मे आपको समझाता हूँ। आप लोग तीर्थंकर भगवान् की वाणी के महत्त्व को समझे, उस पर विचार करें और अपने जीवन को उसी रूप मे ढालें तो आपका कल्याण होगा। आनन्द ही आनन्द होगा।

भविष्यदत्त-चरित —

कृतसेना, धनमित्र आदि सभी सुखपूर्वक रहने लगे। पहले

कहा जा चुका है कि उस नगर के बाहर एक तपस्वी रहता था। उसका नाम 'कोसी' या कौशिक था। वह कायक्लेश सहन करता किन्तु धूनी जला कर, सचित्त पानी का सेवन करके, कन्दमूल आदि का भक्षण करके जीव हिंसा भी करता था।

एक बार उस नगर में एक मुनिराज पधारे। धर्म-प्रेमी नर-नारी उन्हें वन्दना करने तथा उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए गये। मुनिराज ने अपनी गम्भीर वाणी से, प्रभावशाली शब्दों मे धर्मोपदेश दिया। मुनिराज ने ससार की असारता का चित्र अकित किया और बतलाया कि यह जीव धर्म का आचरण न करके किस प्रकार संसार भ्रमण करता है और दु:खो का अनुभव करता है। कर्मो के अधीन होकर संसारी जीव नाना योनियो मे भ्रमण करता है। कभी नरक योनि प्राप्त करता है तो क्षण भर भी वहा शान्ति या विश्रान्ति नही पाता है। नारकी जीव परस्पर एक दूसरे को दुस्सह यातनाएं पहुंचाते हैं। तिस पर परमाधामी देवता और भी गजब ढाते हैं। नारक जीवो को क्षेत्र जन्य अपार वेदना भी भुगतनी पड़ती है। नरक गति की यातना इतनी भयकर होती है कि सुनने मात्र से दिल दहल जाता है। नरक से निकल कर जीव तिर्यंच गति मे उत्पन्न होता है तो भी क्या कष्टों का अन्त आ जाता है? मूक भाव से वध-बन्धन आदि की अनेक पीड़ाएं उनका पिण्ड नही छोड़ती। मनुष्य गति कदाचित् मिल जाय तो भी नीचकुल, दरिद्रता, विकलांगता, शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि के अनेकविध दु:ख दावानल की तरह जलाते रहते हैं। देवगति पाकर भी अनेक देवों को दास का कार्य करना पड़ता है। बड़े देवताओं की ऋद्धि देख

कर डाह का दुःख भोगना पडता है । मृत्यु की विभीषिका सामने खड़ी होती है । इस प्रकार यह चतुर्गति रूप ससार कष्टो का घर है । अनादि काल से जीव इन दुःखों को सहते-सहते अभ्यस्त हो गया है । मगर विवेकशील मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इन दु.खों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे ।

मुनिराज का इस प्रकार उपदेश सुनकर नगर--निवासी नर और नारी लौट कर जाने लगे तो मार्ग मे कोसी नामक तापस उन्हे मिला । उसका हिंसा जनक क्रिया काण्ड देख कर लोगों ने उसका तिरस्कार किया । धीरे-धीरे समस्त नगर निवासियो ने उसका अपमान करना शुरू कर दिया । सिर्फ कृतसेना और धनमित्र ही तापस की सेवा करते रहे । वे क्षण भर के लिए भी तापस की सेवा से विमुख नही होते थे ।

धनमित्र का एक मित्र था । उसका नाम था नन्द । दोनो में परस्पर अच्छी प्रीति थी, मगर नन्द धर्मात्मा था और इस कारण वह धनमित्र के घर प्राय. नही जाता था । एक दिन धनमित्र ने नन्द से कहा—मित्र ! तुम हमारे यहां क्यों नही आते ? हमारे यहा अनेक मित्र इकट्ठे होते हैं और मजा–मौज करते हैं । तुम्हे भी आना चाहिए ।

नन्द बोला—भाई, तुम्हारे हमारे बीच में एक दीवाल आड़ी खड़ी है । वही दीवाल मुझे तुम्हारे यहा आने से रोक देती है ।

धनमित्र—कौन सी दीवाल ?

नन्द – रात्रि भोजन की। मैं रात्रि मे भोजन नही करता और तुम रात्रि में भोजन करते हो। मैं तुम्हारे यहाँ आऊँ तो तुम मेरी मनुहार करोगे। मैं अपनी प्रतिज्ञा को भंग नही करूँगा और तुम्हे बुरा लगेगा। इसी कारण मैं आने से बचता रहता हूँ।

धनमित्र—तो भाई, रात्रि भोजन मे पाप क्या है? जो चीज दिन में खाई जा सकती है, वही रात्रि में खाई जा सकती है। अगर दिन मे खाना पाप नही है तो रात्रि में खाना पाप क्यों है।

नन्द—भाई, मेरी बात सुनो। रात्रि भोजन पापों और दोषों का घर है। रात्रि मे अधेरा करके खाओ तो जीव-जन्तु भी खाये जा सकते हैं और यदि प्रकाश करके खाओ तब भी वही बात है, प्रकाश से आकर्षित होकर बहुत से सूक्ष्म और स्थूल जन्तु उड-उड कर आते हैं और भोजन मे गिर जाते है। उनमें वहुतेरे तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि आंखों से खास तौर पर रात्रि मे दिखलाई ही नही पडते। यह धार्मिक दृष्टि से बडी हानि है। स्वास्थ्य के लिहाज से भी रात्रि भोजन हानिकारक होता है। भोजन करके सो जाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। रात्रि भोजन अप्राकृतिक है। देखो, तोता रात्रि मे कुछ भी नही खाता है। कबूतर और यहाँ तक कि पक्षियों मे निकृष्ट समझा जाने वाला कौवा भी रात्रि मे चुगने नही जाता। तो क्या मनुष्य इनसे भी अधम है जो रात्रि मे भोजन करे? कहां तक बतलाऊँ, रात्रि का भोजन अन्धा भोजन है। अनेक दोषो का जनक है। सभी धर्म-शास्त्र एक स्वर से रात्रि भोजन की निन्दा करते हैं।

नन्द का यह कथन सुन कर धनमित्र कांप उठा। उसने उसी दिन से रात्रि भोजन का परित्याग कर दिया। उसने कृतसेना और गुणमाला आदि परिवार की महिलाओ को भी समझाया और उन्होंने भी रात्रि भोजन त्याग दिया।

धनमित्र की रुचि अब वास्तविक धर्म की ओर आकृष्ट हुई। नन्द की संगति से वह धर्म का आचरण भी करने लगा। उसने श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये, प्रति दिन णमोकार मत्र का जाप करने लगा और हर्षित होकर सुपात्र दान देने लगा। फिर भी तापस की सेवा वह बराबर करता रहा। तापस को साता उपजाने मे उसने कसर नही रक्खी।

उधर विजोयर मन्त्री तथा नगर के नर-नारी तापस की निन्दा करते ही रहते थे। अपनी निन्दा सुन कर तापस को बडा क्रोध आता था। एक दिन तापस के चित्त मे यह भावना उत्पन्न हुई कि यदि मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप देवता बन जाऊंगा तो मन्त्री से करारा बदला लूंगा और इन नगर निवासियो को भी निन्दा करने का मजा चखाऊंगा। कहा है:—

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

इस भावना के अनुसार और काय क्लेश सहन करने के कारण कोसी तापस मर कर व्यन्तर देव के रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम अशनि वेग हुआ और वह तिलकपुर पाटन में रहने लगा।

इधर राजा की आज्ञा पाकर, विजोयर मन्त्री ने सेना ले जा

क्रूर खधार देश पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं मे भयानक संग्राम हुआ। उस संग्राम में तीर लगने के कारण मंत्री विजोयर का प्राणान्त हो गया।

मन्त्री के परलोक गमन का समाचार पाकर राज्य मे शोक छा गया। धनमित्र के हृदय को तो भारी आघात लगा। उसके नेत्रों मे नीर भर आया। वह अपने ऊपर किये हुए उपकार का स्मरण करके कहने लगा—हाय मंत्रीजी ! आपने मुझ पर अपार उपकार किया था ! आपके ही अनुग्रह से मुझे राजा से सन्मान प्राप्त हुआ था ! अफसोस, आप असमय मे ही हम से बिछुड़ गए ! धनमित्र को इस प्रकार विलाप करते देख वहुत-से लोग उसे समझाने और सान्त्वना देने आये। किसी प्रकार धीरज धर कर धनमित्र कृतसेना के पास पहुँचा। कृतसेना अपने पिता के वियोग से अत्यन्त मर्माहत हो रही थी ! वह विसूर-विसूर कर रुदन कर रही थी। शोक के समय स्नेहीजनों को देखते ही शोक का वेग अधिक प्रवल हो उठता है। तदनुसार धनमित्र को आते देखा तो कृतसेना और अधिक दुखित होकर रोने लगी। उसे अपने पिता की गुणगरिमा व्यथित करने लगी। वह कहने लगी—हाय ! पिताजी के राज्य में मैं अपने पति के दु.ख को भूल गई थी। पिताजी कभी मेरी वात नही टालते थे। मैने धनमित्र को नगरसेठ बनाने के लिए कहा तो उन्होने यह भी करवा दिया। आज पिताजी की गैर मौजूदगी मे मैं अनाथ हो गई ! निराधार हो गई ! अब संसार में मेरा कौन रह गया ? कौन मुझे प्यार से 'बिटिया' कह कर पुकारेगा ? मैं किसकी शरण में जाऊँगी ?

धनमित्र ने कृतसेना को खूब समझाया। उसने कहा—

बहिन, चिन्ता न करो, शोक का परित्याग करो। जीवन स्थिर किसी का नहीं है। सभी को आगे-पीछे जाना है। कोई अमर होकर नही आया है। सभी की एक न एक दिन मृत्यु होती है। मृत्यु के साधन यहां सदैव तैयार रहते हैं। अतएव किसी के मर जाने मे अचरज ही क्या है ? अचरज हो सकता है तो जीने में ही हो सकता है। अतएव धैय धारण करो। जन्म के पश्चात् मृत्यु होना तो निश्चित ही है।

इस प्रकार अपने धर्मभ्राता धनमित्र के बहुत समझाने-बुझान से कृतसेना को कुछ सान्त्वना मिली। धीरे--धीरे उसका शोक कम हो गया। अब वह जिनेन्द्र भगवान् की सेवा एव ध्यान मे लीन होकर रहने लगी।

विजोयर मत्री का जीव मर कर तिलकपुर मे यशोधर राजा के रूप मे उत्पन्न हुआ और सुख पूर्वक वहाँ राज्य करने लगा। संयोग एव होनहार की वात है कि कोसी तापस और उसकी निन्दा करने वाले विजोयर मत्री दोनो ही मृत्यु के पश्चात् तिलकपुर मे जन्मे।

भाइयो ! पूर्व जन्म का वैर और प्रेम किस प्रकार आगामी जन्म पर असर डालते हैं और उनका फल जीवों को किस तरह सुख एवं दुःख का कारण बनता है, यह बात इस कथा से स्पष्ट होने जा रही है। विमलबुद्धि मुनिराज भविष्यदत्त राजा को उसके पूर्वभव का वृत्तान्त सुना रहे हैं। आगे क्या होता है, यह फिर देखा जायगा।

११,१२-११-४८



धर्मकथा

स्तुति :—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ऋषभदेवजी की माताश्री का नाम मरुदेवी था । आचार्य महाराज कहते हैं कि जगत् में हजारों-लाखों स्त्रियाँ हुई

हैं और आज भी हैं। वे अपने उदर से पुत्रो को जन्म भी देती हैं, किन्तु माता मरुदेवी भगवती ने जैसा पुत्र रत्न उत्पन्न किया, वैसा किसी अन्य माता ने उत्पन्न नही किया। रात्रि के समय देखा जाय तो असख्य तारे आकाश मे दिखलाई पडते है। विस्तृत आकाश तारासमूह से व्याप्त प्रतीत होता है। इतने बहुत तारे होने पर भी रात की रात ही बनी रहती है। मगर प्रात.काल जब एक सूर्य प्रकट होता है तो रात्रि का अन्त हो जाता है। अध-कार विलीन हो जाता है और सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है। इस प्रकार अन्धकार को विनष्ट करके प्रकाश फैलाने वाले सूर्य को उत्पन्न करने वाली पूर्व दिशा ही है। कोई भी अन्य दिशा सूर्य को जन्म नही दे सकती। इसी प्रकार मरुदेवी माता के अतिरिक्त किसी अन्य माता मे ऐसी शक्ति नही है, जो भगवन्! तुम्हारे समान पुत्र को उत्पन्न कर सके। हे माता मरुदेवी! इस जगत् पर तुम्हारा अपार उपकार है कि तुमने तीनो लोको में उद्योत करने वाले पुत्र ऋषभदेवजी को जन्म दिया है। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

यों तो सभी पुत्रवती माताए भाग्यशालिनी कहलाती है और समझी जाती हैं, मगर जिनके पुत्र जन्म लेकर परोपकार मे, जगत् के कल्याण मे, अपना जीवन लगा देते हैं, वे माताए सचमुच भाग्यशालिनी है। जिनके सपूत स्वय धर्म का आचरण करके दूसरो को भी धर्म के मार्ग पर अग्रसर करते हैं, उनकी कूख धन्य है। जो पुत्र माता का दूध पीकर स्व-पर कल्याण करता है और विश्व के समक्ष कोई महान् आदर्श उपस्थित कर जाता है, उस माता का दूध सफल हो जाता है। नीतिकार कहते हैं.—

पुण्यतीर्थे कृतं येन, तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः, समृद्धो धार्मिकः सुधीः ॥

अर्थात् जिसने किसी पवित्र भूमि मे अत्यन्त कठोर तपस्या की होती है, उसका पुत्र, माता-पिता की अधीनता में रहने वाला ऋद्धिमान, धर्मात्मा और सद्‌बुद्धिशाली होता है।

वास्तव मे पुण्य के प्रताप से ही इष्ट-संयोग की प्राप्ति होती है। अतः यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि गुणवान पुत्र की प्राप्ति होना सौभाग्य की ही बात है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि जिसकी सन्तान जितनी ज्यादा गुणवान् है, वह उतना ही अधिक भाग्यवान् है। इस कसौटी पर अगर माता मरुदेवी के पुण्य को कसने चलें तो उनकी कोई सीमा नही रहती। सर्वोत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न सन्तान जिन्हे प्राप्त हुई उनका पुण्य सर्वोत्कृष्ट क्यो न कहलाएगा ? इसीलिए आचार्यश्री ने फरमाया है कि माता मरुदेवी ने जैसे पुत्र को जन्म दिया, वैसा किसी अन्य माता ने नही ।

कहा जा सकता है कि भगवान् ऋषभदेव के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरो की माताओ ने क्या भगवान् ऋषभदेव सरीखे पुत्रो को जन्म नही दिया है ? अगर उन्होने भी जन्म दिया है तो फिर क्यों कहा गया कि अन्य माताओं ने वैसे पुत्र को जन्म नही दिया ?

इस प्रश्न का उत्तर मैं कई बार दे चुका हूं। सभी तीर्थंकर समान गुणों से विभूषित होते हैं, अतएव एक किसी भी तीर्थंकर

की जो स्तुति की जाती है, वह सभी तीर्थंकरों को समान रूप से लागू होती है। नाम भले ही भिन्न हो, मगर तीर्थंकरो के गुणों में कोई भेद नही होता। अतएव यहां भगवान् ऋषभदेवजी के सम्बन्ध मे जो कहा गया है, वह सभी तीर्थंकरों के सम्बन्ध में समझना चाहिए और माता मरुदेवी के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह सभी तीर्थंकरो की माताओ के विषय मे समझना चाहिए। इस प्रकार माता मरुदेवी ने जैसे असाधारण पुत्र को उत्पन्न किया, उसी प्रकार माता त्रिशलादेवी ने भी असाधारण पुत्र को जन्म दिया है। अतएव यहां यही तात्पर्य लेना चाहिए कि तीर्थंकर की माताओं ने जैसे पुत्र उत्पन्न किये, वैसे अन्य माताओ ने नहीं।

भला तीर्थंकर भगवान् की समता कौन कर सकता है ? उनकी आत्मा जन्म-जन्मान्तरों के पवित्र संस्कारो को साथ लेकर अवतरित होती है और अपने वर्त्तमान जीवन मे अन्तिम श्रेणी की सिद्धि प्राप्त करती है। तीर्थंकर भगवान् स्वय तिरते हैं और अन्य भव्य जीवो को भी तारते हैं। इसीलिए तो उन्हे 'तिण्णाणं, तारयाणं, मुत्ताणं-मोयगाणं,' कहा गया है। भगवान् ने अपनी आत्मा को सर्वथा निर्मल बनाया और धर्मोपदेश देकर जगत् का भी कल्याण किया। भगवान् जहां पधारते थे, वही धर्म का उपदेश करते थे।

ठाणांगसूत्र मे चार प्रकार की धर्म कथा बतलाई गई है। यथाः-

अक्खेवणी, विक्खेवणी, संवेगणी निव्वेगणी।

इनमे से पहली आक्षेपणी कथा है। श्रोताओ के मोह को दूर करके उन्हे तत्त्व की प्रेरित करने वाली कथा आक्षेपणी कथा कहलाती है। यह आक्षेपणी कथा भी चार प्रकार की है--(१) आचार आक्षेपणी, (२) व्यवहार आक्षेपणी, (३) प्रज्ञप्ति आक्षेपणी और (४) दृष्टिवाद आक्षेपणी। अपने आचार द्वारा अथवा आचारांग सूत्र के व्याख्यान द्वारा श्रोताओं को तत्त्व की ओर प्रेरित करना आचार-आक्षेपणी कथा कहलाती है। इसी तरह अपने व्यवहार अर्थात् प्रायश्चित्त द्वारा अथवा व्यवहारसूत्र के व्याख्यान द्वारा तत्त्व की ओर प्रेरित करना व्यवहार-आक्षेपणी कथा कहलाती है। जिसे तत्त्व मे संशय या अश्रद्धा हो उस श्रोता को साधु--भाषा मे समझा कर अथवा प्रज्ञप्तिसूत्र का व्याख्याण करके तत्त्व की ओर आकृष्ट करना प्रज्ञप्ति--आक्षेपणी कथा कहलाती है। दृष्टिवाद सूत्र की व्याख्या करके अथवा तत्त्वो का सूक्ष्म रूप से निरूपण करके श्रोताओं को धर्म-तत्त्व की ओर प्रेरित करना दृष्टिवाद-आक्षेपणी कहलाती है।

अपने शिष्यो और श्रोताओं को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग मे लगाने वाली कथा (उपदेश) विक्षेपणी कथा है। इसके भी चार भेद हैं:—

(१) स्वसिद्धान्तो की युक्ति युक्तता, सत्यता सिद्ध करके परकीय सिद्धान्त के दोषो को प्रकट करनेवाली कथा।

(२) परकीय सिद्धान्त का कथन करते हुए अपने सिद्धान्त की स्थापना करने वाली कथा।

(३) परकीय सिद्धान्त मे जो--जो विषय जिनेन्द्र भगवान् के कथन के समान हैं उनका निरूपण करके, विपरीत कथन के दोष दिखलाना।

(४) मिथ्या वादो के दोष दिखलाकर फिर जिनागम से मिलती हुई बातो का निरूपण करना।

तीसरी सवेगनी कथा है। कर्मों का फल जीव को किस प्रकार भोगना पडता है, और यह संसार कैसा असार एव दुःखो से परिपूर्ण है, इत्यादि विवेचना करके श्रोताओं के चित्त मे वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा सवेगनी कथा कहलाती है। यह कथा भी चार प्रकार की कही गई है। इस भव की असारता एव दु:ख-मयता का कथन करना, परलोक की असारता का विवेचन करना, अपने शरीर की क्षणभगुरता, अपावनता आदि का निरूपण करना और पर शरीर अर्थात् मुर्दे के शरीर का स्वरूप चित्रित करके वैराग्य भाव उत्पन्न करना। इस कथा से श्रोताओ को ससार और शरीर का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो जाता है और उनका मोह या तो हट जाता है या शिथिल हो जाता है।

निर्वेद का अर्थ है उदासीनता। संसार के प्रति उदासीन भाव उत्पन्न करने वाली कथा निर्वेदनी कथा कहलाती है। इसके भी चार भेद किये गये है। जैसे:—

(१) इस लोक मे अर्थात् वर्त्तमान जीवन मे किये हुए अशुभ कर्म इसी लोक मे अर्थात् इसी जीवन मे किस प्रकार दुःख मय फल प्रदान करते हैं, यह कथन करना।

(२) इस भव मे किये हुए अशुभ कर्मों का फल परभव में भोगना पडता है इस प्रकार की विवेचना करना।

(३) पूर्व भव में आचरण किये हुए पाप-कर्मों का फल जीव को इस भव मे किस प्रकार भोगना पड़ता है, इत्यादि निरूपण करना।

(४) पूर्व भव मे किया हुआ पापाचार आगामी भवो में दुःख रूप फल प्रदान करता है, यह बतलाना।

प्रत्येक धर्मोपदेशक को इन धर्म कथाओं का स्वरूप समझ कर ही उपदेश करना चाहिए, जिससे उपदेशक का भी कल्याण हो और श्रोताओं का भी कल्याण हो।

धर्मकथा करना भी एक प्रकार की तपस्या है। भगवान् ने बारह प्रकार का तप बतलाया है। उसमे ग्यारहवी तपस्या स्वाध्याय है। स्वाध्याय के पाँच भेद है:—वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा।

गुरु महाराज से विनयपूर्वक शास्त्र पढ़ना वाचना स्वाध्याय है। शास्त्रो के पठन से अज्ञान का नाश होता है और ज्ञान के अलौकिक प्रकाश से आत्मा उद्भासित हो जाती है। हित-अहित का, पुण्य-पाप का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान हो जाता है। यही कारण है कि वाचना-स्वाध्याय भी तपस्या मे गिना गया है और वह भी आभ्यन्तर तपस्या मे गिना गया है। जो जितना ज्यादा शास्त्र-स्वाध्याय करेगा, वह उतनी ही अधिक तपस्या का फल पाएगा। किसी को अधिक समय न मिल सके और एक पन्ना

भी प्रतिदिन शास्त्र का पढे तो उसे भी तपस्या के फल की प्राप्ति होगी । कई लोग कहते है कि तप करने की अभिलाषा तो बहुत रहती है, मगर भूखा नही रहा जाता । ऐसे लोगो से कहा जा सकता है—भाई, भूखे नही रह सकते तो न सही, तपस्या तो भगवान् ने अनेक प्रकार की बतलाई है । स्वाध्याय करने में तो भूखा रहने की कोई आवश्यकता नही है । दो-चार पृष्ठ शास्त्रो के पढो—शाँत और एकाग्र चित्त से पढो । उसके अर्थ पर विचार करो । कोई बात समझ मे न आये तो विद्वानो से प्रश्न करके समझो । समझे हुए विषय पर वार-वार विचार करो । बहुत बार तुम बेकार बैठे रहते हो । बेकारी मे मस्तिष्क मे तरह-तरह के तूफान आते है, हानिकारक बातें सूझती हैं, दुर्विचार आते है । किसी को अपने पास विठला कर प्रयोजन-हीन और कर्मवन्ध की कारणभूत वाते करने लगते हो । इन सब से क्या यह अच्छा न होगा कि तुम पढे या सुने हुए शास्त्र की वातों पर विचार किया करो ? जव कोई काम न हो उस समय भी अगर शास्त्र-चिन्तन कर लिया करो तो कितना लाभ होगा, इस बात की तुम कल्पना भी नह' कर सकते ।

इसी प्रकार नमोकारमन्त्र का जाप करना, 'लोगस्स' और 'नमोत्थु णं' के पवित्र पाठों की माला फेरना भी तपस्या है । प्रतिक्रमण करना और उसके पाठो को श्रवण करना भी तपस्या है । इससे भी कर्मों की निर्जरा होती है । पापो का नाश होता है । जैसे साबुन से कपडो का मैल कट जाता है, उसी प्रकार तपस्या से आत्मा का मैल कटता है । इस प्रकार स्वाध्याय करना आत्मा

के मैल को दूर करके उसे निर्मल बनाना है। यह बिना कठिनाई का साधन है। इससे क्यों चूकते हो ?

कोई कहता है—शास्त्र समझ मे तो आता नही। फिर उसका स्वाध्याय करके क्या करे ? कोरा पाठ बोल जाने से क्या लाभ है ? इस सम्बन्ध मे मेरा कहना यह है कि सर्वप्रथम तो यही प्रयत्न करना चाहिए कि शास्त्र का आशय तुम्हारी समझ मे आ सके। मनुष्य के लिए ऐसा करना कोई बडी बात नही है। बड़े-बड़े विद्वान् या पण्डित, जो शास्त्रों के ज्ञाता समझे जाते हैं, पहले शास्त्रों का एक भी अक्षर नही समझते थे। प्रयास करके उन्होंने योग्यता प्राप्त की और शास्त्र समझने लगे। तुम भी प्रयास कर सकते हो और वैसी योग्यता प्राप्त कर सकते हो। शास्त्र के आशय को समझ कर अगर स्वाध्याय किया जायगा तो निस्सन्देह खूब आनन्द मिलेगा, स्वाध्याय रसमय बन जायगा, चित्त मे तल्लीनता उत्पन्न हो जायगी और इससे कर्मों की अपेक्षाकृत अधिक निर्जरा होगी। लेकिन इसका आशय यह नही समझना चाहिए कि अर्थ को समझे बिना स्वाध्याय करने से कुछ लाभ नही होता। आपने कभी देखा होगा कि जब किसी मनुष्य को साँप काट खाता है तो वह मूर्छित हो जाता है। उस स्थिति मे मन्त्र-पाठक विष दूर करने के लिए मन्त्र पढता है। मूर्छित मनुष्य उस मन्त्र का अर्थ नही समझता, यहाँ तक कि मन्त्र पढ़ने वाला भी मन्त्र के शब्दो का सही आशय नही समझता है फिर भी मन्त्र का पाठ करने से विष उतर जाता है। इसी प्रकार शास्त्र का स्वाध्याय करते-करते पापों का विष नष्ट हो जाता है।

साँप का जहर उतारने के लिए चौबीस अक्षरों का मन्त्र

होता है। ऐसा राजमलजी सोजत वालो ने कहा। उस मन्त्र का पाठ करके पानी के छीटे देने से बेहोश भी उठ कर खडा हो जाता है। अक्षरो मे वडी ताकत है। अभी दो--चार अक्षर बोलने से शान्त प्रकृति का मनुष्य भी एकदम कूदने लगता है। किसी लायक आदमी से कह दिया जाय—'नालायक कही के, काला मुंह कर यहाँ से!' तो क्या वह कूदने नही लगेगा? यह शब्दो की शक्ति नही तो किसको शक्ति है? तात्पर्य यह है कि शास्त्र के शब्दो मे भी वडी शक्ति है। ऐसी हालत मे अगर शास्त्र का भाव समझ मे न आवे तब भी शास्त्र का पाठ करने से लाभ ही है।

भाइयो! शास्त्र का स्वाध्याय एक महान् तप है। अतएव एक भी दिन स्वाध्याय किये विना व्यतीत न होने दो। और अधिक न वन सके तो 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' के ही दो--चार पृष्ठ प्रतिदिन पढ़ लिया करो। अब तो छपे हुए और हिन्दी भाषा मे अनुवादित शास्त्र भी उपलब्ध है और कोई पढना चाहे तो किसी प्रकार की कठिनाई नही है। होनी चाहिए मानसिक रुचि। जिसकी रुचि स्वाध्याय की ओर होगी, वह साधन जुटा ही लेगा। रुचि न हो तो सौ बहाने वनाते क्या देर लगती है? प्राचीनकाल मे जब छपाई का प्रचार नही हुआ था तब शास्त्र प्राप्त करने मे बड़ी कठिनाई होती थी। फिर भी जिज्ञासु जन पढते ही थे। आज तो किसी भी प्रकार की असुविधा नही है और सस्ते दामो मे ही छपे शास्त्र मिल जाते हैं। इतने पर भी अगर कोई शास्त्र--स्वाध्याय नही करता तो यह उसका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

कोई वात समझ मे न आने पर उसके ज्ञाता से विनय-पूर्वक पूछना चाहिये। विद्वान् मुनिराज हो तो 'मत्थएण वदामि'

कह कर पूछना चाहिए। उनकी गैर-मौजूदगी मे विद्वान् गृहस्थ से पूछना चाहिए। परन्तु विनय के साथ प्रश्न करना ही उचित है। कोई कह सकता है कि अगर विनय करके न पूछा तो क्या हानि है ? भाई, विनय के साथ पूछना शास्त्र का विनय करना है और अविनय से प्रश्न करना शास्त्र का अविनय है। ज्ञान का, देव, गुरु और धर्म का विनय करना चाहिए। अधिक क्या, स्वाध्याय करना आरम्भ करते समय भी तीन बार वन्दना करनी चाहिए। कई लोग यो ही पढ़ने बैठ जाते हैं, किन्तु विनय बड़ी चीज है। विनय से ज्ञान आता है। विनय से धर्म की वृद्धि होती है। जैन शासन मे विनय की बडी महिमा बतलाई गई है। विनय के साथ सीखे हुए दो अक्षर भी हजार अक्षरो के बराबर काम देते हैं।

पहले सीखे ज्ञान को फेरना भी स्वाध्याय है। इसे परिवर्त्तना या आवृत्ति करना कहते हैं। बार-बार फेरने से ज्ञान स्थायी होता है, चिरकाल तक विस्मरण नही होता और नवीन नवीन सूझ उत्पन्न होती है। इस प्रकार परिवर्त्तना स्वाध्याय भी कल्याणकारी है। इससे भी अनन्तानन्त कर्म-वर्गणाएँ टूटती हैं।

कहा जा सकता है कि विचार करने से कर्म किस प्रकार टूट सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि विचार करने से जैसे कर्मों का बन्ध होता है, उसी प्रकार कर्म टूटते भी हैं। कर्म बन्ध और कर्म-निर्जरा मे विचार प्रधान कारण हैं। कोई पुरुष वेश्या के पास जाने का विचार करता है तो उसे कर्मों का बन्ध होता है या नही ? तो जिस प्रकार बुरा विचार करने से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, उसी प्रकार शुद्ध विचार करने से कर्मों की निर्जरा भी होती है।

पढे हुए ज्ञान पर वार-वार विचार करना अनुप्रेक्षा नामक स्वाध्याय कहलाता है। इस स्वाध्याय से अपूर्व ज्ञान की प्राप्ति होती है। शास्त्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय का वोध होने लगता है। अनन्त जन्म-मरण के कारणभूत कर्मों का नाश हो जाता है। अनुप्रेक्षा करने से भावना निर्मल होती है और अन्तःकरण पवित्र होता है। जितनी देर तक तुम शास्त्र का चिन्तन करते रहोगे, उतनी देर तक तुम्हारे मन में एकाग्रता रहेगी और मलीन विचारों से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा। अतएव अनुप्रेक्षा नामक स्वाध्याय भी अत्यन्त कल्याणकारी है।

पाँचवे नम्बर का स्वाध्याय धर्म-कथा है। धर्म कथा को आज कल की प्रचलित भाषा मे 'व्याख्यान' कहते हैं। धर्म-कथा करना भी निर्जरा का कारण है। पहले वस्तु के स्वरूप की स्थापना करना और जीव, अजीव, पुण्य एव पाप है, लोक है, संवर है, निर्जरा है, वंध है और मोक्ष है, आदि समस्त वस्तुओ की स्थापना करके उन्हे भली भाँति समझाना व्याख्यान या धर्म-कथा का ध्येय होता है। धर्म-कथा के चार भेद पहले वतलाये जा चुके हैं। व्याख्यानकर्त्ता को उचित है कि श्रोताओ की योग्यता को देख कर जब जो धर्म-कथा करना योग्य हो, वही करे और उन्हे मुक्ति के पथ की ओर अग्रसर करे। साधारणतया धर्म-कथाओ का क्रम यह है कि पहले आक्षेपणी फिर विक्षेपणी, और तत्पश्चात् सवेगणी तथा निर्वेदनी कथा करनी चाहिए। सवेगनी कथा मे, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, ससार की अनित्यता दिखलाई जाती है। यह जगत् अनित्य है, अशाश्वत है, मिथ्या है, सपने की माया है। हे जीव ! जिस जगह तू विश्राम लेकर बैठा है वहाँ सदैव बैठा

ही नही रहेगा। किसी समय अचानक ही चल देना पड़ेगा। अरे भाई! देख, तेरे बाप--दादा आदि पूर्वज चले गये और तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और बड़े--बड़े महारथी भी चले गये। तब क्या तू ही अकेला अमर रहेगा? देखते-देखते सारी रंगत ही बदल जाती है। संवेगनी कथा के द्वारा श्रोताओ के चित्त मे संवेगभाव उत्पन्न किया है। संवेग के पश्चात् ही निर्वेद आता है। जैसे-भगवान् महावीर चौवीसवें तीर्थंकर के रूप मे जन्मे। अरिहन्त अवस्था प्राप्त होने पर उनके १४ हजार साधु थे और ३६ हजार आर्याएँ थी। साधुओं मे इन्द्रभूति गौतम स्वामी मुख्य थे और साध्वियो में चन्दनबालाजी मुख्य थी। जब भगवान् ग्राम, नगर आदि मे विचरते थे तो सभी साधु उनके साथ नहीं रहते थे, किन्तु सब उनकी आज्ञा में विचरते थे। विहार करते हुए त्रिकालदर्शी भगवान् चम्पा नगरी में पधारते हैं:—

चम्पा नगरी आये विचरते चम्पा नगरी के उद्यान।

विहार प्रान्त मे किसी समय राजगृह नगर बड़ा समृद्धिशाली नगर था। कहते हैं उसके एक भाग मे तो दस लाख करोड़पतियो की दुकानें थीं। उस समय भारतवर्ष मे धन की कमी नही थी। जैसे आजकल अमेरिका धनाढ्य देश गिना जाता है, इस देश में ऐसे-ऐसे साहूकार मौजूद हैं, जिनकी एक-एक मिनिट में छत्तीस-छत्तीस हजार रुपये की सिर्फ ब्याज की आमदनी है। इसी प्रकार उस समय भारतवर्ष भी धनवान् देश था। अतएव राजगृह नगर, जो मगध की राजधानी था, अगर अपरिमित सम्पत्ति से युक्त हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

उस समय राजगृह के राजा कोणिक थे। उधर विचरते हुए भगवान् महावीर स्वामी चम्पा नगरी के बाग में पधारे। पता लगते ही हजारो की संख्या मे नगर के नर-नारीवृन्द भगवान् के दर्शनार्थ चल पड़े। उस समय वहा का राजा युद्ध मे गया हुआ था, किन्तु अन्तःपुर मे खबर पहुँचते ही राजा श्रेणिक की दसो रानियाँ रथ मे बैठ कर रवाना हुई। काली, महाकाली, सुकाली, कृष्णा, सुखसेना, महाकृष्णा, प्रिय सेना आदि दसो रानियाँ प्रभु के दर्शन के लिए पहुँची। राजा श्रेणिक उस समय परलोकगमन कर चुके थे। इन दसो रानियो के एक-एक पुत्र था। सभी को अपने-अपने पुत्र प्राणो से भी अधिक प्यारे थे। दसो पुत्र अपने भाई राजा कोणिक की युद्ध मे सहायता करने के लिए युद्ध मे गये हुए थे। दसो रानियाँ भगवान् के समवसरण मे आई और उपदेशामृत का पान करने लगी। भगवान् ने चारो प्रकार की कथा की। उसे सुन कर रानियो के दिल मे खलबली मच गई।

मिल कर सब महारानी बोली —
धन--धन वाणी प्रभु ! आपकी।
अणी वाणी मे परम वैराग, जिनवरजी ।।

जब धर्मोपदेश समाप्त हो चुका तो दसों रानियो ने हाथ जोड कर विनय की-प्रभो ! आप दया के सागर है और सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। हमारे हृदय मे जो संशय है, कृपा करके उसका निवारण कीजिए। चेटक और कोणिक-राजा का युद्ध हो रहा है। उस युद्ध मे हमारे प्राणप्रिय पुत्र भी सम्मिलित हुए है। महा प्रभो ! कहिए, हम अपने पुत्रो को कब देख सकेगी ? वे हमे कब मिलेगे ?

रानियो ने जो प्रश्न किया, उसके उत्तर मे प्रभु ने कहा:—

नो अट्ठे समट्ठे ।

अर्थात—अब यह नही हो सकता। तुम अपने पुत्रों से नहीं मिल सकतीं। रानियों के प्रश्न का उत्तर भगवान् ने ज्योतिष से नही दिया। साधु ज्योतिष का प्रयोग नही करता। जो ज्योतिष एवं निमित शास्त्र के प्रयोग मे लग जाता है, वह अपनी साधना से भटक जाता है।

कई महिलाएँ सन्तान प्राप्ति आदि की कामना से प्रेरित होकर ज्योतिषियो, नैमित्तिकों आदि के चक्कर मे पड़ जाती हैं। कई तो चमारो की देवी के आगे माथा रगड़ने जाती हैं। कितनी ही छोरे के लालच मे पड़ कर अपने पतिव्रत्य धर्म को भी खण्डित कर डालती हैं। लेकिन उन्हे समझना चाहिये कि मनोवाछित सामग्री पुण्य के अनुसार ही प्राप्त होती है। जिसने जितना पुण्य उपार्जन किया हैं, उसे उतनी ही सुखद सामग्री मिलेगी। जिसने आक वोया है उसे कल्पवृक्ष के फल किस प्रकार मिल सकते हैं? ताजियों के नीचे निकलने-वाली बाइयां क्या ततीस करोड़ देवी-देवताओ को वेकाम समझती हैं? क्या ताजिया मे सन्तान देने की शक्ति है? मगर इस बात का विचार करता कौन है?

कई गुंडे लोग चूड़िया आदि वेचने का वहाना करके गृहस्थो के घर में आते है और घर का हाल-चाल जान जाते हैं।

कई लोग मन्त्र--तंत्र के बहाने भी घरो मे घुसते हैं और घर का अन्दाज लगा जाते है। फिर रात्रि मे आकर चोरी कर ले जाते हैं। कई जगह तो यह भी सुना गया है कि इस प्रकार रात्रि के समय घर मे घुस कर गुंडे लोग औरत को ही उडा कर ले गये!

बहिनो! समय बडा नाजुक है। इस समय मे बहुत सावधान और सतर्क रहने की आवश्यकता है। आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो आप अपने पति से कह कर नही मगवा सकती है? पुत्र आदि के द्वारा खरीद नही कर सकती हैं? परन्तु रास्ता चलते, अपरिचित लोगो को घर मे मत आने दो। वे किसी समय धोखा दे सकते हैं, विश्वासघात कर सकते हैं। उनके चंगुल मे मत पड़ो। गुंडे लोग कई प्रकार से घरो मे प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं। कई लोग बाबा बन कर, महात्मा बन कर, साधु-सयासी का भेष बना कर घर मे प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं-तेरे यहां यो हो जायगा, त्यो हो जायगा। मगर ऐसा कहने वालो को धूर्त्त समझो। उनके पास कोई चमत्कार होता तो वे स्वयं क्यो दरवाजे-दरवाजे पर भीख मांगते डोलते?

प्राचीनकाल मे किसी राजा के यहा पुत्र न होता तो वे महात्मा के पास जाकर पूछते थे। महात्मा उत्तर देते-गौसेवा करो। मेरे पास पुत्र नही है। मै पुत्र का दान कैसे कर सकता हूं? कालीदास के रघुवश को देखने से इस विषय मे स्पष्ट जानकारी हो जायगी। मतलब यह है कि पुत्र आदि की प्राप्ति किसी के देने से नही हो सकती। वह तो अपने कर्मों के अनुसार होती है। अतएव पुत्र-प्राप्ति के लिए कही इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नही है। इसके अतिरिक्त यह भी समझ लेना चाहिए

कि जो त्यागी होकर भी निमित्तशास्त्र का प्रयोग करता है, वह सच्चा त्यागी--साधु नही है ।

भगवान् कहते हैं—राजा चेटक के अचूक बाण के निशान ने तुम्हारे पुत्रो का प्राणहीन कर दिया है । अब तुम्हारे पुत्र जीवित नही रहे हैं ।

भगवान् महावीर स्वामी का उत्तर सुन कर और अपने पुत्रो की मृत्यु का हाल जान कर दसो रानियो के हृदय को वहुत तीव्र आघात लगा । वे उस आघात को सहन नही कर सकी । मूर्छित होकर धडाम से धरती पर गिर पडी । उनकी दासियों ने उचित उपचार करके उन्हे सचेत किया । चेत आते ही रानिया फिर विसूर-विसूर कर रोने लगी ।

रानियो की यह मोहमयी अवस्था देख कर भगवान् ने कहा--रानियो ! रोना व्यर्थ है । रुदन करने पर भी अब परलोक-गत पुत्रों का मिलन नही हो सकता । अलबत्ता, आर्त्तध्यान करने से तुम भविष्य के लिए और भी अधिक कर्मों का वध कर लोगी ।

कहा जा सकता है कि सर्वज्ञ होने के कारण भगवान् को पता तो था कि इस दुस्सवाद से रानियो को मार्मिक व्यथा होगी, फिर भगवान् ने उन्हे यह सवाद क्यो सुनाया ?

आपको मालूम है कि उपासकदशाग सूत्र में महाशतक श्रावक की कथा आई है । इस श्रावक की १३ पत्नियाँ थीं और वे सभी मिथ्यात्विनी थी । महाशतक सम्यग्दृष्टि और श्रावक था । भगवान् महावीर का चेला था । उसकी पत्नियो मे

रेवती नाम की एक पत्नी बड़ी क्रूर, हत्यारिणी और पापिनी थी। महाशतक ने जब देख लिया कि यह शरीर अब अधिक टिकने वाला नही है तो पहले तो उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वहन किया और फिर सथारा धारण कर लिया। उस समय महाशतक की बारहवों पत्नी कामान्ध होकर उसके पास गई। तब श्रावक ने अवधिज्ञान से जान कर उससे कहा—तू धर्मविमुख है। तू सातवें दिन मर कर छठे नरक मे जाएगी।

यह बात भगवान् महावीर स्वामी को विदित हुई। उन्होंने गौतम स्वामी को आदेश दिया—जाओ और महाशतक श्रावक से कहो कि तुमने अपनी पत्नी के प्रति कठोर शब्दो का प्रयोग किया है, अतएव प्रायश्चित्त करो। गौतम स्वामी गये और श्रावक ने दण्ड लेकर आत्मशुद्धि की। इसका कारण यही मालूम होता है कि श्रावक ने क्रोध के वशीभूत होकर यह शब्द कहे थे। किन्तु भगवान् ने रानियो के हित का विचार कर करुणा से प्रेरित होकर फर्माया था। इस पर से यह नियम फलित हुआ है कि छद्मस्थ ऐसी भाषा का प्रयोग नही कर सकता। केवलज्ञानी प्रभु अपने ज्ञान मे जैसा देखते हैं, कह देते हैं। उन्हे कोई दोष नही लगता। भगवान् को विदित था कि अपने पुत्रो की बात सुन कर रानियो को वैराग्य होगा और वे आत्मकल्याण का मार्ग अङ्गीकार कर लेगी।

भगवान् के कथन का वास्तव मे यही परिणाम होना था। दसो रानियां कहने लगी ससार अनित्य है, नीरस है, निःस्वाद है। हम राजा कोणिक से आज्ञा लेकर साध्वी-दीक्षा लेगी और अपनी आत्मा का कल्याण करेंगी। इसके बाद सब ने दीक्षा

अङ्गीकार की और रत्नावली, कनकावली आदि उत्कट तप किया। उसी भव मे उन्होने अपना अन्तिम कल्याण साधन कर लिया।

भाइयों ! मनुष्य को प्रायः तीन अवसरो पर वैराग्य आता है—श्मशान मे, भोग के अन्त में, और जीवन के अन्त मे। परन्तु अकसर वैराग्य की वह लहर टिकती नही है—आती है और चली जाती है। मनुष्य जब दाग मे जाता है तो वहा बड़ा अफसोस करता है ! ससार की क्षणभगुरता का विचार करके कहता है—अरे, जिन्दगी तो स्वप्न के समान है ! किसी का जीवन कायम नही रहा और न रहेगा। एक दिन अपने को भी चल देना पडेगा। परन्तु जब स्नान करके दुकान पर जाता है तो सब भूल जाता है और 'ब्लेक मार्केट' करने लगता है। कम तोलना शुरू कर देता है, नापने मे बेईमानी करता है, अगर सरकारी नौकरी है तो रिश्वत खाने लगता है ! वैराग्य उसका हवा हो जाता है ! किन्तु वह भाग्यशाली है जिसके चित्त में आई हुई वैराग्य की हिलोर उसके चित्त के मेल को सदा के लिए बहा ले जाती है और मानव जीवन के वास्तविक कर्त्तव्य की ओर मनुष्य को खींच ले जाती है।

स्थायी वैराग्य भाव उसी को प्राप्त होता है जो स्वाध्याय करता है या धर्म-कथा सुनता है। अतएव आत्म कल्याण करने के लिए धर्म कथा सुनो और स्वाध्याय करो।

भविष्यदत्त चरित—

राजा भविष्यदत्त, मुनिराज विमलबुद्धि के निकट धर्म-कथा सुनने के लिए गया था। धर्मकथा के पश्चात् पुण्य का प्रभाव

प्रकट करने के लिए मुनिराज भविष्यदत्त आदि के पूर्वभव का वृत्तात प्रकट कर रहे हैं। मुनिराज ने फर्माया कि नन्द (मित्रनन्द) ने मुनि दीक्षा अगीकार की और तप करके तथा षड्काय के जीवो की यातना करके अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाया। मित्र-नन्द मुनि उच्च श्रेणी की समता मे विचरने लगे थे और अपने शरीर की ममता भी उनमे नही रह गई थी। इस तपश्चर्या के प्रताप से वह बारहवे स्वर्ग मे इन्द्र के रूप मे उत्पन्न हुए।

धनदत्त और धनलक्ष्मी यथा समय मृत्यु को प्राप्त होकर क्रमश. धनावह (भविष्यदत्त के पिता) और कमला (कमलश्री-भविष्यदत्त की माता) के रूप मे उत्पन्न हुए। हे भविष्यदत्त ! तुम धनमित्र के जीव जन्मान्तर करके भविष्यदत्त के रूप मे उत्पन्न हुए हो। जिस समय तुमने पूर्वभव के शरीर का त्याग किया, उस समय गुणमाला (तुम्हारी पूर्वजन्म की पत्नी) ने तुम्हारे वियोग मे बहुत रुदन किया। वह अपने पति के गुणो का स्मरण कर-करके विलाप करने लगी। उस समय कृतसेना उसके पास गई और उसे किसी प्रकार धैर्य बधाया। गुणमाला ने उसी समय श्वेत साड़ी धारण कर ली। सधवा के योग्य समस्त शृङ्गार का परित्याग कर दिया और ससार की मोह-ममता से अलग रह कर धर्मध्यान करने लगी। यथासमय काल करके वह हस्तिनापुर-नरेश के यहा कन्या के रूप मे उत्पन्न हुई।

कृतसेना ने व्रतो को धारण करके धर्म का आचरण किया और भव के अन्त मे वह तिलकपुर मे सेठ के घर कन्या के रूप मे उत्पन्न हुई। कृतसेना का पूर्वजन्म पति बन्धुदत्त के रूप मे उत्पन्न हुआ है, जिसने तुम्हे जगल मे छोड़ दिया था।

इस प्रकार कृतसेना, जो तिलकसुन्दरी के रूप में उत्पन्न हुई है, बन्धुदत्त की पूर्व जन्म की पत्नी है। इसी संस्कार से प्रभावित होकर उसने तिलकसुन्दरी को अपनी पत्नी बनाने का उद्योग किया था। सुमति तुम्हारी पूर्वभव की पत्नी गुणमाला ही है।

इस प्रकार मुनिराज के मुखारविन्द से अपना तथा अपने परिवार का पूर्वभव का वृत्तान्त सुन कर राजा भविष्यदत्त के चित्त में वैराग्य भाव का उदय हो आया। भाइयो ! यह सब धर्म-कथा का ही प्रताप है।

१२-११-४८ }





अटल विधान

स्तुति :-

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस—
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्था ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

हे नाभिनन्दन ! ऋषभ प्रभो ! मुनिजन आपको परम पुरुष मानते हैं, आप सूर्य के सदृश वर्ण वाले है । पूर्ण रूप से निर्मल

हैं और अधकार से परे हैं। जो आपकी शरण प्राप्त करता है वही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। हे मुनियो के नाथ ! आपके सिवाय मोक्ष का और कोई कल्याणकर मार्ग नही है।

भाइयो ! भगवान् ने स्वयं अजर--अमर पद प्राप्त किया है, इस कारण जो भगवान् का आश्रय लेते हैं, वे पुरुष भी अजर--अमर हो जाते हैं। उन्हे बुढापा नही सताता और वे मृत्यु के ग्रास नही होते।

वृद्धावस्था और मृत्यु किसी को प्रिय नही है, सब को जीवन प्रिय है और जीवन मे भी यौवन प्रिय है। आचार्य महाराज ने यहां वही प्रिय पद प्राप्त करने का मार्ग बतलाया है। भगवान् की भक्ति करने, स्मरण करने, उपासना करने और भगवान् के वचनामृत का पान करके तदनुसार व्यवहार करने से भक्त वही पद प्राप्त कर लेता है जो उसे अतिशय प्रिय है और जिस पद को प्राप्त कर लेने पर जरा--मरण का स्पर्श भी नही होता।

संसार मे बहादुर कौन है ? सर्वोपरि कौन है ? क्या दूसरो को जान से मार डालने वाला बहादुर है ? नही, वह बहादुर नही है। वास्तव में बहादुर वह है जिसने मौत को मार डाला हो-मृत्यु पर विजय प्राप्त की हो, उसी की बहादुरी ऊँचे नम्बर की है, जो मृत्यु को मार कर अमरत्व को प्राप्त कर चुका हो। वही वीर, बहादुर, जगदुत्तम और पुरुषोत्तम है जो पुनः गर्भ मे नहीं आता है। नही तो कोई कितना ही बडा आदमी क्यो न कहलाता हो, जो मृत्यु का शिकार होता है, उसे छोटा बनना ही पड़ता है।

शास्त्र मे कहा है—'घोरा मुहुत्ता अबल सरीर' अर्थात् काल बडा ही भयानक है और शरीर अत्यन्त निर्बल है। जो शरीर—जीवन श्वासोच्छ्वास पर अवलम्बित है, जिसकी जिन्दगी हृदय के स्पन्दन पर ही टिकी हुई है, उसकी दुर्बलता का और क्या सबूत चाहिए ? जिसके विनाश के सैकडो कारण विद्यमान है, वह कभी भी समाप्त हो सकता है। जब किसी भी कारण के उपस्थित होने पर जीवन का अन्त सन्निकट आ जाता है, मृत्यु की विकराल मूर्ति नेत्रो के समक्ष होती है, वह समय बडा ही डरावना होता है। बडे-बडे विद्वानो और बलवानो का भी साहस उस समय चुक जाता है और वे अपने आपको दुर्बल एव असहाय अनुभव करने लगते हैं। जसे बकरे के सामने सिह आ जाय तो बकरे के प्राण सूख जाते हैं और सिंह के द्वारा मारे जाने से पहले ही वह अधमरा हो जाता है, उसी प्रकार मृत्यु की भीषण छाया देख कर बड़े-बड़े निर्भीक सेनापति भी दीन और अधमरे हो जाते है मौत इतनी जबर्दस्त है !

मौत प्रकृति का एक अटल विधान है। साधारणतया लोग मृत्यु को एक अत्यन्त अनिष्ट विधान समझते हैं और मौत न हो तो राजी होते है। परन्तु दूसरी दृष्टि से भी इस सम्बन्ध मे विचार करने की आवश्यकता है। जो लोग आज अपने भाई की बहू का भी पेट नही भर सकते, उनके दादा-परदादा आदि सभी पुरखा जीवित होते तो वे उनका पालन-पोषण किस प्रकार करते ? बेटे की विधवा बहू को सासू फूटी आंखो नही देख सकती। वह अत्यन्त अनुचित, असभ्य और मर्मवेधी वचन कह कर उसके अन्तस्तल को पीडा पहुचाती है। कहती है—'राड', तू

मेरे बेटे को खा गई ! हाय हाय, यह कैसा भयकर अत्याचार है ! जो बेचारी बाई भर जवानी मे सौभाग्य से, सासारिक सुखों से वचित हो गई है, जिसके लिए जीवन भारभूत हो गया है, जिसकी समस्त आशाएँ धूल मे मिल गई हैं, जिसका जीवन परावलम्बी बन गया है, जिसके हृदय मे संताप की आग दिन रात दहकती रहती है, जिसको सान्त्वना देने की अत्यन्त आवश्यकता है, उस बेचारी गरीबिनी को जब ऐसी गालिया दी जाती है तो कौन कह सकता है कि उसे कैसी वेदना होती होगी ? मैं तो कहता हूँ कि इस प्रकार के अपशब्द कह कर विधवा के जीव को जलाना घोर हिंसा है, ऐसा पाप है कि जिसका प्रायश्चित बहुत कठोर होगा। अपशब्द कहने वाली चाहे सासू हो, चाहे और कोई हो, उसे इसका ऐसा फल भुगतना पड़ेगा कि छठी का दूध याद आ जायगा। विधवाओ के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार ने न जाने कितनी विधवाओ को सन्मार्ग से च्युत कर दिया है ! लोग चाहते तो यही हैं कि विधवाएँ आजीवन शीलव्रत का पालन करे, मगर व्यवहार ऐसा करते है कि वे न गिरना चाहे तो गिरने को मजबूर हो जाएँ ! ऐसा व्यवहार करने वालो ने विधवा विवाह के समर्थको की सख्या बढा दी है ! यदि आप चाहते हैं कि विधवाएँ अपने धर्म का पालन करे तो आपको अपना व्यवहार बदल देना होगा। विधवाओ के साथ सहानुभूति और आदर का व्यवहार करना पड़ेगा, उन्हें शीलवती होने के नाते सन्मान देना पड़ेगा। अमगल रूप नही मानना होगा।

भला विचार करो कि जैसे सासू को अपना पति प्यारा लगता है, उसी प्रकार क्या बहू को अपना पति प्यारा नही लगता

होगा ? फिर सासू ने अपने पति को नही खाया तो वहू अपने पति को क्यो खा जायगी ?

वहिनो, ऐसे कठोर शव्द किसी को मत कहो। इससे महान् पाप होता है और घोर पाप कर्मों का बंध होता है।

तात्पर्य यह है कि मरना सव को बुरा लगता है और जीना सव को प्यारा है। श्रीमदाचारांगसूत्र मे वतलाया है—

सव्वे पाणा पिआयुआ ।

अर्थात्—प्रत्येक प्राणी को जीवन प्यारा लगता है। मरना किसी को प्रिय नही है।

मृत्यु को कोई नही चाहता, फिर भी मृत्यु से कोई बचता नही है। किसी ने ठीक ही कहा है—

दुनिया मे देखो सैकड़ों, आये चले गये।
सव अपनी करामात दीखाये चले गये
रावण रहा न भीम. न अर्जुन महाबली,
एक वह बचे जो कर्म को मारे चले गये ॥

अगर मौत को जीतना है तो कर्मों का नाश करो। कर्मों को नष्ट करने का मार्ग भगवान् वीतराग देव ने वतलाया है। उस मार्ग पर चलोगे तो फिर जन्मने और मरने का काम ही नही रह जायगा ! मौजूदा शरीर तो छोडना ही पडेगा, लेकिन आगे न जन्म लेना होगा, न मरना होगा ।

शरीर मे से जीव निकलने के पाँच स्थान बतलाये गये हैं। ठाणागसूत्र के पाँचवे ठाणे के तीसरे उद्देशक मे कहा है.—

'पंचविहे जीवनिज्झाणमग्गे पएणत्ते, तंजहा-पाएहिं, उरुहिं, उरेण, सिरेणं, सव्वंगेहिं।

(१) पाएहि णिज्झायमाणे णिरयगामी भवइ।
(२) उरुहि णिज्झायमाणे तिरियगामी भवइ।
(३) उरेणं निज्झायमाणे मणुयगामी भवइ।
(४) सिरेणं निज्झायमाणे देवगामी भवइ।
(५) सव्वंगेहि णिज्झायमाणे सिद्धिगइपज्जवसाणे पण्णत्ते।

अर्थात्—शरीर में से पांच स्थानों से जीव निकलता है—(१) पैरो के अगूठो से लेकर घुटनो तक से (२) घुटनो से लेकर उरुओ तक के भाग से (३) उरुओ-जाघो से लेकर छाती तक के भाग से (४) छाती से लगा कर सिर के भाग तक से और (५) सभी अंगो से। पैरो से निकला जीव नरकगति में जाता है, जाघो से निकला तिर्यचगति मे जाता है, छाती से निकला जीव मनुष्यगति मे उत्पन्न होता है। और सिर से निकला हुआ जीव देवगति मे उत्पन्न होता है। समस्त अगो मे से निकलने वाला जीव सिद्धगति प्राप्त करता है।

यहां यह बात ध्यान मे लेनी चाहिए कि पैरों से लेकर घुटने तक का जो एक द्वार वतलाया गया है, उसमें भी जीव की

निकलने के कई स्थान हो सकते हैं। यह ऊँचाई जीव की गति की ऊंचाई की द्योतक होगी। पैरो के अगूठे से निकला जीव अगर सातवे नरक मे जायगा तो थोडी ऊँचाई से निकलने वाला जीव छठे नरक मे जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिए। स्थूल रूप मे गति एक होने पर भी प्रत्येक में तर-तमता होती है। जानवरो में कोई गधा होता है तो कोई हाथी या घोड़ा होता है। मनुष्यो के लिए तो कहावत ही है: -

मनुष्य मनुष्य में अन्तर।
एक हीरा एक कांकर॥

स्त्रियो में भी कोई पद्मिनी तो कोई चुड़ैल होती है। भाइयो! स्त्रियाँ चार प्रकार की होती हैं।

एक वार महादेवजी और पार्वती दोनो वैठे थे। बातचीत के सिल-सिले मे पार्वती ने कहा मेरी इतनी उम्र हो गई, परन्तु एक भी छोकरी नही हुई। ओ महादेव शम्भु! मेरी एक लडकी तो होनी चाहिए।

भाइयो कोई कितना ही सुखी क्यो न हो, मगर सन्तान के अभाव मे उसके सुख की पूर्णता नही होती। कहा है.—

शशि बिन रैन रैन बिन रजनी बिन रजनी बिन शशि कस्यो?
कुच बिन हार हार बिन कज्जल बिन कज्जल शृंगार कस्यो?
दीपक बिन मंदिर घृत बिन भोजन, पुत्र बिना परिवार कस्यो?
'केवलदास' बनाय कहे भाई! जीवदया बिन धर्म कस्यो?

भाइयों ! रात्रि की शोभा चन्द्रमा के बिना नही होती और चन्द्रमा की शोभा रात्रि के बिना नही होती । दिन मे चन्द्रमा को देखो तो एक दम श्री हीन--फीका दिखलाई देता है और विना चन्द्रमा की रात भी बडी डरावनी प्रतीत होती है । इसी प्रकार मकान मे दीपक न हो तो मकान किस काम का ? अन्त मे केवलदास कहते हैं कि जीव दया के अभाव मे धर्म कैसा ? जिसके घट में दया नहीं है, उसकी सब बाते झूठी हैं । उसका सारा आचार-विचार मिथ्या है । इसी प्रकार पुत्र के बिना परिवार सूना है ।

तो पार्वती, महादेवजी से एक कन्या के लिए प्रार्थना करने लगी इसी समय सामने से एक गधी आई । महादेवजी ने कहा— पार्वती, ले, यह तेरी छोरी है । पार्वती ने उसे उठाकर काँख में लिया तो वह गधी एक वर्ष की छोकरी हो गई । पार्वती गोद मे लेकर बहुत प्रसन्न हुई । छोकरी बालोचित क्रीड़ाए करती है और पार्वती के सुख का पार नही । वह उसे दूध पिलाती है, प्यार करती है, पुचकारती है !

थोड़े दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये । तब पार्वती ने फिर कहा-एक से मेरे क्या होगा ? मुझे तो एक छोकरी और चाहिए । उधर से एक बिल्ली आ गई तो महादेवजी ने कहा-अच्छी बात है, लो, यह तुम्हारी दूसरी छोकरी है । पार्वती ने उसे गोद मे लिया तो वह भी छोकरी बन गई । पावती उसे पाकर आनन्दित हो गई ।

कुछ समय बीतने के बाद पार्वती को फिर तीसरी छोकरी

की इच्छा हुई। तब वह मौका देखकर महादेवजी से बोली—मुझे तो एक और छोकरी चाहिए। उसी समय एक कुत्ती वहा आ गई। महादेवजी बोले—ले, यह तीसरी छोकरी ले ले। पार्वती ने उसे गोदी मे लिया तो वह भी छोकरी हो गई। अब पार्वती आनन्द से रहने लगी। महादेवजी ने पूछा—अब तो आनन्द है? तब पार्वती ने मुस्करा कर कहा—तीन का टोटका होता है, मुझे तो एक और चाहिए। सयोगवश उसी समय उधर से महालक्ष्मीजी आई। महादेव ने कहा—लो, यह तुम्हारी चौथी छोकरी है। पार्वती ने महालक्ष्मी को जो उठाया तो वह भी छोकरी बन गई। पार्वतीजी चारो छोकरियो को खिलाती-पिलाती, नहलाती और सम्भालती। कोई रोती, कोई जिद करती, कोई मल-मूत्र से कपडा बिगाड लेती। इससे पार्वती भी परेशान हो गई! तब व्यग करके महादेवजी ने एक बार कहा—छोकरियों से अघा गई या नही? और आवश्यकता हो तो संकोच मत करना-कह देना मुझसे!

महादेवजी की व्यगोक्ति सुन कर पार्वती को भी हँसी आ गई। वह बोली—मैं तो ऊब गई इन छोकरियो से! जान आफत मे आ गई है। अब यह बड़ी भी हो गई हैं। इनकी सगाई करदो।

महादेव बोले अब यह अडगा भी मेरे माथे?

पार्वती—नही तो सगाई के लिए किससे कहूँगी? इन्हे व्याहना तो पडेगा ही।

क्रमशः सभी लडकियो का विवाह कर दिया गया। विवाह के बाद विदा होकर जो गई सो फिर आई ही नही। एक दिन पार्वती को अपनी लडकियो का स्मरण हो आया और उनकी

आंखो में आसू भर आए। तब महादेवजी ने उनसे पूछा—क्यों, आज क्या बात है ? क्या चाहिए।

पार्वती ने कहा—चाहिए क्या ? बारह महीने हो गये। लड़कियां पराई हो गई हैं, तब से आज तक उनकी खबर ही नहीं मिली। नही बुलाना हो तो मत बुलाओ, कम से कम खबर तो ले आओ।

महादेवजी चले और पहले पहल गधी बाई के यहा पहुचे। दोनो व्याई (समधी) मिले। दिन खुशी के साथ व्यतीत हुआ। दूसरे दिन महादेवजी ने समधी से पूछा—हमारी लडकी की तरफ से कोई तकलीफ तो नही है आपको ? समधी ने कहा - और तो सब ठीक है, काम भी खूब करती है, पर एक अवगुण उसमे है। वह यह है कि अच्छे कपडे पहने-पहने भी राख मे लोट जाती है। महादेवजी ने मन मे सोच लिया – आखिर तो गधेडी ही है।

वहा से चल कर महादेवजी बिल्लीबाई के घर पहुचे। वहाँ भी ससुर से पूछा – आपको लडकी से कोई शिकायत तो नहीं है ? ससुर बोले- सब टीक है, परन्तु एक बडा दोष उसमें है। दूध गर्म करती है तो ऊपर की मलाई खा जाती है और विलोबना करती है तो मक्खन खा जाती है। महादेवजी समझ गए कि है तो बिल्ली !

वहाँ से भी चल कर महादेवजी कुत्तीबाई के घर पहुचे। वहाँ पूछने पर उन्हे ज्ञात हुआ—बात-बात मे गुस्सा करती है और कुत्ते की तरह भौकने लगती है। महादेवजी को समझते देर

न लगी कि कुत्ती गुस्सा न करेगी और भौंकेगी नही तो और क्या करेगी ?

अन्त मे महादेवजी चौथी महालक्ष्मी के घर पहुँचे । पूछने पर उनके समधी बोले- सुनिये समधीजी ! जब वह हमारे यहा नहीं आई थी तो हम अन्न के लिए भी तरसते थे । आपकी कन्या आई तो आज मोहरो के घड़े भरे है । पहले हमे कुत्ते भी नही पूछते थे और अब राजसभा मे भी हमारा सन्मान होता है । आपकी बेटी तो साक्षात् लक्ष्मी है । आस-पास ग्रामो और नगरो मे दूर-दूर तक उसकी कीर्त्ति फैली हुई है । भला आप सरीखे महापुरुष की कन्या ऐसी न होगी तो किसकी होगी ? महादेवजी समझ गये कि लक्ष्मी तो लक्ष्मी ही है ।

यह एक दृष्टान्त है । इस दृष्टान्त का आशय यह है कि स्त्रियाँ चार प्रकार की हैं और पुरुष भी चार प्रकार के होते है । जिस पुरुष या स्त्री को कायदे से बैठना उठना नही आता, जिसे अपने कपडे-लत्ते भी सम्भालने का तमीज नही है, जो गंदगी मे-कूडे कचरे मे ही बैठ जाय, वह पहली श्रेणी मे गिनने योग्य है ।

जो बिल्ली बाई के समान हैं वे खूमचे वालो से लेकर चुपके-चुपके गुलाबजामुन गटक जाती है अपने बाल-बच्चो को भी याद नहीं करती ।

जो बात-बात मे झगडा करे, जिसे अपने पास आया हुआ दूसरा व्यक्ति न सुहाता हो, छोटी-छोटी बातो पर लडने को तैयार हो जाय, जिसकी जीभ वश मे न रहे और गाली-गलौज करती रहे, उसे कुत्ती बाई की श्रेणी मे रक्खा जा सकता है ।

तुम्हारे आज के कर्त्तव्य ही कल तुम्हारे भविष्य का निर्णय करेंगे। उस निर्णय में न ईश्वर का हस्तक्षेप हो सकेगा और न किसी दूसरी शक्ति का। इस प्रकार तुम स्वय ही अपने भविष्य को मगलमय वना सकते हो और तुम स्वयं ही अपने भविष्य को अमगलपूर्ण वना सकते हो। तुम चाहो तो मृत्यु को जीत कर अमरत्व प्राप्त कर सकते हो। ईश्वर के समकक्ष वन सकते हो। कोई ऐसा ऊँचा पद नही है जिसे प्राप्त करने का अधिकार तुम्हे न हो। होनी चाहिए योग्यता। योग्यता कर्त्तव्य करने से आती है। इसलिए शास्त्रकार धर्माचरण करने की आवश्यकता प्रकट करते हैं।

भविष्यदत्त चरित:—

अभी जो पद बोला गया था, उसमे वतलाया गया है कि हे चतुर मनुष्य ! यह मानव-जीवन अनमोल है। इसे पाकर वृथा न खो। देख, अवसर निकला जा रहा है। शीघ्र सावधान हो जा।

भाइयों ! शास्त्र सुनने और पढने का तथा सन्तो की वाणी सुनने का एक मात्र प्रयोजन आत्म-कल्याण मे उद्यत होना ही है। जो लोग वीतराग की वाणी सुन करके भी उस ओर ध्यान नही देते और अपने जीवन को सफल बनाने का कुछ भी प्रयत्न नही करते, उन्हे पश्चात्ताप करना पड़ता है। अतएव उपदेश को सुनकर उसके अनुसार प्रवृत्ति करना ही विवेकवान् पुरुषो का कर्त्तव्य है।

राजा भविष्यदत्त ने मुनिराज की वाणी का श्रवण किया। उससे उसे खयाल आया कि संसार अनित्य है। जीवन क्षणिक

है । जल्दी ही आत्महित करने के लिए उद्यत हो जाना ही मेरे लिए उचित है । इस प्रकार विचार करके भविष्यदत्त, मुनिराज को यथाविधि वन्दना करके तुरन्त अपने महल मे लौट आया । लौटते ही उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया । बुलाकर राजपाट उसे सौप दिया । कुटुम्ब का समस्त उत्तरदायित्व भी उसके सुपुर्द कर दिया । इस प्रकार अपना समस्त भार पुत्र के जिम्मे करके उसे उचित शिक्षा दी । भविष्यदत्त ने बतलाया कि किस प्रकार राजा बन कर प्रजा की सेवा मे अपनी समस्त शक्तियां समर्पित कर देनी चाहिए । राजा मे अन्य मनुष्यो की अपेक्षा कोई प्राकृतिक विशेषता नही होती । वह भी अन्य मनुष्यो की भाति ही जन्म लेता है । फिर भी समस्त प्रजा उसे ईश्वर की तरह मानती है । असाधारण सत्कार देती है । इसके बदले मे राजा को भी कुछ देना चाहिए । अतएव राजा प्रजा के कल्याण के लिए अपना समग्र जीवन दे देता है । जो ऐसा करता है और प्रजा को पुत्र के समान समझ कर पालता है, वही वास्तव मे राजा होने योग्य है । भर जवानी में प्रभुता पाकर बहुत-से रईस मदोन्मत्त हो जाते हैं और कुपथ पर चलने लगते हैं । वे अपने जीवन को नष्ट कर डालते हैं, अपने उत्तराधिकारियो के रास्ते मे कांटे बो जाते हैं और प्रजा को भी उन्मार्गगामी बनने की परोक्ष प्रेरणा देते हैं । अतएव जिसके हाथ में सत्ता हो, उसे खूब सोच-समझ कर कदम उठाना चाहिए । उसे स्वय नीति के मार्ग पर चलना चाहिए और प्रत्येक मूल्य पर नीति की रक्षा करनी चाहिए ।

भविष्यदत्त ने आगे कहा— कुमार ! अपने कुटुम्ब का भी समस्त भार अब तुम्हे ही सौपता हूँ । गृहस्थजीवन में पारिवारिक

जो सहनशील है, सदाचारी है, जिसके स्वभाव मे कोमलता और मधुरता है, जो अपने घर की सुव्यवस्था करता है, वह लक्ष्मी की श्रेणी मे रहने योग्य है। इस श्रेणी में कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, उसकी कीर्त्ति सर्वत्र फैल जाती है। वह सर्वप्रियता प्राप्त कर लेता है।

हा, तो मनुष्यों में भी इस प्रकार तरतमता होती है। इस तरतमता से देवगति भी नही बची है। अगर आँख से जीव निकलता है तो कोई भवनपति, वाण-व्यन्तर आदि मे उत्पन्न होता है। यहा भी ऊँच-नीच का भेद यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

कहा जा सकता है कि जीव, शरीर के किस स्थान से निकलता है, यह बात कैसे मालूम हो ? उत्तर यह है कि इस बात को जाचने के उपाय है। मरने के बाद शरीर ठडा पड़ जाता है, किन्तु जिस हिस्से जीव निकलता है, वह हिस्सा कुछ समय बाद तक भी गर्म मालूम पडता है। कइयों के मरते समय टट्टी-पेशाब निकल पड़ते है, तब समझना चाहिए कि वह जीव नीच गति मे गया है।

भाइयो ! यह चिन्ता मत करो कि मृत्यु के पश्चात् हमें कौनसी गति या योनि मिलेगी ? इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या है ? भविष्य की गति और योनि तो तुम्हारे हाथ की बात है। तुम जो गति प्राप्त करना चाहो वही प्राप्त कर सकते हो। दूसरे लोग तो यह कहते हैं—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयो. ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥

अर्थात्—अज्ञानी--ससारी जीव अपना सुख-दु.ख भोगने मे स्वय समर्थ नही है। अतएव ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर वह स्वर्ग या नरक मे जाता है।

इस प्रकार कह कर उन्होने ईश्वर के हाथ मे मनुष्य की चोटी पकड़ा दी है। मगर जैन-धर्म का यह विधान नही है। जैन-धर्म के अनुसार तो जीव अपने किये कर्मों के अनुसार ही स्वर्ग या नरक मे जाता है। जो जैसे कर्म बाँधेगा, उसे वैसी ही गति प्राप्त हो जायगी। ऐसी स्थिति मे गति के लिए चिन्तित होने की अपेक्षा अपनी गति को सुधारने के लिए उत्तम आचरण करना ही अधिक उपयुक्त है। पवित्र आचार और पवित्र विचार रक्खोगे तो नीच गति से पाला पड ही नही सकता। अतएव परभव सुधारना है तो इहभव को सुधारो। जिसने अपना वर्त्तमान जीवन सुधार लिया समझो उसने आगामी जीवन सुधार लिया। इसके विपरीत अगर आपने मौजूदा जीवन को बिगाड़ लिया है, अनीति और अधर्म का आचरण करके मलीन बना लिया है तो लाख चिन्ता करने पर भी भावी जीवन नही सुधर सकता। कहा है—

मनुष्य का जन्म अमोलक पाय,
अरे चातुर ! मत एल गँवाय।
हाथ से बाजी तेरी जाय,
प्रभु–गुण गाना हो तो अब गाय ॥

भाइयो ! उत्तम गति मे जाना हो तो उत्तम काम करो।

सुख-शान्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसका पारिवारिक जीवन शान्तिपूर्ण अमृत-रस से परिपूर्ण और सन्तोषमय नहीं है, वह कितना ही वैभवशाली क्यो न हो, बाहर उसकी कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, वह वास्तव मे सुखी नही हो सकता। अतएव तुम अपने जीवन को अगर दिव्य बनाना चाहो तो परिवार को स्वर्ग बनाना। परिवार को स्वर्ग बनाने की कला क्या है ? सबसे पहले निष्पक्षवृत्ति की आवश्यकता है। तुम अपने पुत्रों को जितना प्यार करो, अपने भाइयो के पुत्रो को भी उतना ही प्रेम करना। परिवार की महिलाओ का वस्त्र-आभूषण से समान रूप से सत्कार करना। इस विषय मे तनिक भी पक्षपात करने से गृहशान्ति नष्ट हो जाती है। सबको समुचित अधिकार देना। कभी दूसरो की इच्छा के सामने झुकना पडता है और कभी दूसरो को अपनी इच्छा के अनुकूल झुकाना भी पडता है। अतएव अवसर देख कर काम करना।

स्वार्थभावना से भी परिवार मे क्लेश उत्पन्न हो जाता है। तुम अपने हृदय मे स्वार्थ का भाव न आने देना दूसरो का हिस्सा हड़पने की कभी इच्छा न करना। ऐसा करने से भाई-भाई शत्रु बन जाते है। परिवार तहस-नहस हो जाते हैं। देखो, कौरवो की स्वार्थलिप्सा ने महाभारत का बीजारोपण किया। उन्होने पाण्डवो का हिस्सा हडप लिया, तो कौरव कुल का नाश हो गया ! भाई-भाई की फूट से लंका का राजा रावण मारा गया। चेडा कोणिक सग्राम का कारण क्या था ? उस सग्राम मे करोडो को प्राण देने पड़े। एक भाई ने दूसरे भाई का हक हथियाना चाहा। इससे कितना बडा अनर्थ हुआ !. इसलिए मै कहता हूँ कि तुम

इन उदाहरणो से शिक्षा लेना और दूसरे का अधिकार छीनने का कदापि प्रयत्न न करना।

कुमार! अधिक क्या कहूँ? गुरुजनो का समुचित आदर करना। विद्वानो का सन्मान करना। नीतिज्ञो का परामर्श मानना। दरिद्रो की सहायता करना, प्रजा की रक्षा करना। कुसगति से बचना। सत्संगति करना। अपने जीवन को उज्ज्वल बनाना। कुल की प्रतिष्ठा बढाना। वीतराग प्रभु की भक्ति करना। कनक-कामिनी के त्यागी निर्ग्रन्थ धर्मगुरुओ की उपासना करना। अपने मधुर वचनो से सब को सन्तोष देना। मन से भी किसी का बुरा न सोचना। बस, इतनी बातो पर ध्यान दोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। यह जीवन और आगामी जीवन भी सुखमय बनेगा।

इस प्रकार अपने ज्येष्ट पुत्र को समझा कर भविष्यदत्त दीक्षा ग्रहण करने को उद्यत हुए। उधर भविष्यदत्त की माता कमलश्री और तिलकसुन्दरी के हृदय मे भी वैराग्य की उर्मियाँ उत्पन्न हुई। तीनो ने दीक्षा ग्रहण कर ली। तीनो ने शक्ति भर सयम का पालन करते हुए तपस्या की। अन्त मे काल करके तीनो स्वर्ग को प्राप्त हुए। तीनो एक ही विमान मे उत्पन्न हुए और उन्हे सोलह सागरोपम की स्थिति प्राप्त हुई।

आपको विदित होगा कि प्रत्येक देवता को जन्म से ही अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है। तदनुसार भविष्यदत्त के जीव देवता ने अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया तो उसे पता चला कि पूर्वभव मे मैं भविष्यदत्त था, यह मेरी माता कमलश्री थी और

यह मेरी पत्नी तिलकसुन्दरी थी। उसे यह भी मालूम हो गया कि विमलबुद्धि महाराज से दीक्षा लेकर और संयम का पालन करके हम तीनो देवगति को प्राप्त हुए हैं।

भविष्यदत्त के जीव देवता ने विचार किया—हस्तिनापुर में मेरा परिवार निवास करता है। हम तीनों वहां जाकर उनसे मिले और अपना यह दिव्य वैभव दिखलावे। इस प्रकार इच्छा होते ही तीनो देव विमान में वैठकर हस्तिनापुर की ओर चल दिये।

भाइयो! धर्म के प्रताप से सभी सुखों की प्राप्ति होती है। धर्म का आचरण करके भविष्यदत्त ने कितना विकास किया, यह देखकर अगर आप भी धर्म का आचरण करेंगे तो आपका भी कल्याण होगा।

१३-११-४८





अशक्यानुष्ठान

स्तुति :–

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धि बोधात्–
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेम भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फमाते हैं कि–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

भगवन् ! आपका बोध देवो द्वारा पूजित होने के कारण आप बुद्ध हैं, आप तीन लोक मे सुख-शान्ति का प्रसार करने

वाले होने के कारण शकर हैं, आप मोक्ष-मार्ग की विधि का विधान करने वाले हैं, अत. आप ही विधाता है। और हे प्रभो! यह तो स्पष्ट ही है कि आप पुरुषोत्तम हैं। जगत् के समस्त पुरुषों मे उत्तम हैं। इस प्रकार बुद्धस्वरूप, शंकरस्वरूप, विधातास्वरूप और पुरुषोत्तम (विष्णु) रूप भगवान् आदिनाथ ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है!

भाइयो! चौवीसो तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए हैं। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी थे। आज सौभाग्य से उनके प्रवचन हमे उपलब्ध हैं। भगवान् के ज्ञान मे यह निखिल चराचर विश्व प्रतिबिम्बित हो रहा है। उन्होने अपने केवलज्ञान मे देख कर कहा है—'श्री वीर कहे निरधारा, सुन गौतम वचन हमारा' श्री महावीर स्वामी कहते हैं कि छह बाते ऐसी हैं जिनके विषय मे किसी की ऋद्धि, ताकत तर्क बुद्धि, ज्ञान और उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पराक्रम, पुरुषकार आदि कुछ भी नही चल सकता। अर्थात् किसी की शक्ति नही जो इन छह बातो में से कोई एक बात भी फेर सके।

यह सर्वज्ञ भगवान् की वाणी है' जो इस वाणी को श्रवण करता है, इसका मनन करता है और श्रद्धा लाता है, उसके पाप नष्ट हो जाते है। जो जिनवाणी से विरुद्ध बात करता है उसकी बात मिथ्या समझना और उस पर कभी विश्वास मत करना। छह बातो मे से पहली बात यह है कि जगत् मे जीव को अजीव बनाने की शक्ति किसी मे नही है। किसी की भी बुद्धि और किसी का भी पुरुपार्थ जीव को अजीव नही बना सकता।

कोई कह सकता है कि ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है। क्या उसकी भी शक्ति नही कि वह जीव को अजीव बना सके? अगर वह ऐसा नही कर सकता तो सर्वशक्तिमान् कैसे रहेगा? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि मनुष्य जब एक गलत धारणा बना लेता है तो उसकी संगति बिठलाने के लिए दूसरी गलत बाते भी स्वीकार करनी पड़ती हैं। इस प्रकार गलत बाते बढती चली जाती हैं और सत्य छिपता जाता है। अभी जो प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसके मूल मे भी एक गलत धारणा काम कर रही है। वह गलत धारणा यह है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। पर वास्तव मे ऐसी बात नही है। ईश्वर अनन्तशक्तिमान् तो अवश्य है, किन्तु सर्वशक्तिमान् नही है। क्या ईश्वर मे अपना सरीखा अनादि अनन्त ईश्वर बनाने की शक्ति है? इसके उत्तर मे कोई 'हां' नही कह सकता। फिर भी उसे सर्वशक्तिमान् मानने का आग्रह किया जाता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर मे भी जीव को अजीव बनाने की शक्ति नहीं है। इसी कारण आत्मा को अविनाशी माना गया है। आत्मा अलख, अगोचर, शाश्वत और सनातन है। उसे कोई अजीव बनाने मे समर्थ नही है।

जीव की निकृष्ट से निकृष्ट अवस्था निगोद अवस्था है। निगोद मे जीव अल्पतम चेतना का धारक होता है। उस समय भी अक्षर का अनन्तवाँ भाग ज्ञान उसका अनाच्छादित ही रहता है। उस जघन्य ज्ञान पर आवरण नही चढता। अतएव जीव कदापि अजीव नही हो सकता।

भाइयो! यह सर्वज्ञ सर्वदर्शी का वचन है। यह कदापि मिथ्या नही हो सकता। इसमे किसी किस्म की बाधा नही आ

सकती। भगवान् ने बतलाया है कि द्रव्य की पर्याये तो निरन्तर पलटती रहती है, परन्तु द्रव्य का सर्वथा नाश कदापि नही हो सकता। यही बात आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। इसी बात की पुष्टि हमारे अनुभव से होती है। आप किसी भी वस्तु को लीजिए, उसे पलट कर दूसरे रूप मे कर सकते हैं, मगर क्या शून्य रूप मे भी परिणत कर सकते हैं? कभी किसी ने ऐसा करके दिखलाया हो तो बतलाए!

सीधी-सादी बात तो यह है कि जो अस्तित्ववान् है, वह अस्तित्ववान् ही रहता है, भूतकाल मे उसका अस्तित्व था, वर्त्तमान मे उसका अस्तित्व है और भविष्य काल मे भी उसका अस्तित्व रहेगा। इसी प्रकार आज जिसकी नास्ति है, वह भूतकाल मे भी नही था और भविष्यकाल मे भी नही होगा। अतएव जीव का नाश नही हो सकता। जब नाश नही हो सकता अर्थात् जीव कभी जीव रूप से मिट नही सकता तो वह अजीव भी नही हो सकता। जीव स्वतः सिद्ध द्रव्य है, उसके मूल मे कोई विकृति नही हो सकती। तिलों मे से तेल निकलता है, क्या कभी रेत मे से भी तेल निकलते किसी ने देखा है? सन्तान होगी तो नारी के ही होगी। पुरुष सन्तान का प्रसव नही कर सकता। गेहूँ के पौधे मे ही गेहूँ लगते हैं। मक्की के पौधे मे कभी गेहूँ लग सकते हैं? कहो भाई! है कोई वैज्ञानिक ऐसा जो आक के पौधे मे आम्र--फल उगा दे? जब यह भी होना सम्भव नही है तो जीव को अजीव कौन बना सकता है? जीव का नाश होता तो गीता में यह न कहा होता:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥

गीताकार कहते हैं कि कोई भी शस्त्र जीव (आत्मा) को काटने मे समर्थ नही है, कैसी भी आग क्यो न हो आत्मा को जला नही सकती। पानी उसे गला नही सकता और हवा उसे सोख नही सकती।

इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि जीव सदा जीव के रूप मे ही रहता है। जो शस्त्र से कटता है, आग से जलता है, पानी से गलता है और हवा से सूखता है, वह जीव नहीं, कुछ और ही है—जड है। इस प्रकार जीव कभी अजीव नही बन सकता।

शास्त्र मे दूसरी बात यह बतलाई गई है कि अजीव कभी जीव नही हो सकता। जब वस्तु को चेतन बनाने मे भी कोई समर्थ नहीं है। इस विषय मे अनेक मत हैं। उनकी मान्यताएं भिन्न भिन्न हैं। कोई कुछ मानता है, कोई कुछ मानता है। लेकिन भाइयो! अजीव को जीव कोई नहीं बना सकता है। इस विषय मे पूर्वोक्त विवेचन ही पर्याप्त है। ऊपर जो युक्तियाँ दी गई हैं, वही यहा समझनी चाहिए।

तीसरी बात यह है कि एक साथ दो भाषाएं कोई नही बोल सकता। जैसे 'हाँ' और 'ना' दो शब्द हैं। इन दोनो शब्दो को कोई एक साथ नही बोल सकता। दो शब्द बोलना चाहेगा तो पहले एक शब्द बोलेगा और फिर दूसरे शब्द का प्रयोग करेगा।

यह कदापि सम्भव नही कि दोनों शब्दो का एक ही साथ प्रयोग कर दे। ऐसा करने की है किसी की ताकत ? चाहे कितने ही ग्रामोफोन या रेडियो क्यो न हो, उनमे से कोई भी एक साथ दो शब्द नही बोल सकता। चाहे आसमान से देवता ही क्यो न उतर आवे, वे भी एक साथ दो शब्दो का उच्चारण नही कर सकते। इस जगह किसी की बुद्धि, किसी का विज्ञान, मन्त्र या तन्त्र नही चल सकता।

कोई कह सकता है कि हम गगाजी मे खड़े है। पॉव हमारे पानी में हैं और सिर पर धूप लग रही है। ऐसे अवसर पर दो बातें साथ मे हो रही है। अर्थात् गर्मी भी लग रही है। और सर्दी भी लग रही है। मगर यहॉ भी बारीकी है। जब तुम्हारा ध्यान गर्मी की ओर जाता है तो सर्दी की ओर नही जाता और जब सर्दी की ओर जाता है तो गर्मी की ओर नही जा पाता। इस प्रकार एक साथ दो उपयोग नही होते। एक समय मे काम तो हजारों हो सकते है किन्तु तुम्हारा ध्यान तो एक ही तरफ रहने वाला है। वह अनेक तरफ नही रह सकता। जब तुम्हारा ध्यान ईश्वर की तरफ होगा तो अन्य चीजों की तरफ नही जायगा और जब दूसरी चीजो की तरफ जायगा तो ईश्वर की तरफ नहीं जायगा।

किसी बादशाह की बेगम बदचलन थी। जब वह किसी गैर आदमी के पास जाने लगी, तब बादशाह नमाज पढ रहा था। वह नमाज पढ़ने के लिए ज्यों ही नीचे की ओर झुका तो बेगम उसके ऊपर होकर निकल गई। थोडी देर बाद वह लौट कर भीतर आई और बादशाह भी भीतर आया। बादशाह ने गुस्से

मे आकर पूछा तू मुझे लाघ कर कहाँ गई थी ? बेगम नें कहा—आप सिजदा करते थे, मगर मुझे खबर नही थी। मुझे खयाल होता तो मैं आपको लांघ कर क्यो जाती ? मगर आपको मेरे लाघने का खयाल है तो इससे पता चलता है कि आपका खयाल मालिक की तरफ नही था। कहा है:—

जैसा चित्त हराम मे वैसा हरि मे होय।
चला जाय वैकुंठ मे, पला न पकड़े कोय ॥

बेगम कहती है—यदि आपका ध्यान मेरी ओर था तो खुदा की ओर नही था। खुदा की तरफ खयाल होता तो मेरी तरफ खयाल न जाता।

यह तो एक उदाहरण मात्र है। कहने का मतलब यह है कि एक साथ दो बातो का ध्यान नही रहता। कभी-कभी आपको ऐसा लगता होगा कि हम दो बातो का एक साथ विचार कर लेते है। मगर यह आपका भ्रम मात्र है।

एक समय मे एक ही भाव का वेदन होता है। जिस समय शीत की वेदना होती है, उस समय उष्णवेदना नही होती और जब उष्णवेदना होती है तो शीत-वेदना नही होती, जिस समय आदमी बीमार हो जाता है और उसे वेदना हो रही है, उस समय यदि दस-पाच आदमी आकर उसका मन बहलाने लगे और हास्य-विनोद की बाते करने लगे तो वह आदमी हसने भी लगता है। उस समय कोई उससे पूछे कि भाई हँस क्यों रहे हो ? तुम्हे तो कष्ट हो रहा था न ? तब वह यही कहता है कि मेरा

चित्त उस ओर नहीं था। तो जब वेदना को भूलेगा तभी हँसी आएगी ।

इस प्रकार जैसे एक समय में एक ही उपयोग होता है, उसी प्रकार एक समय मे एक ही शब्द का उच्चारण होता है। एक साथ दो शब्द बोलने मे कोई समर्थ नही है। अगर कोई दो शब्द बोलता है तो एक के बाद ही दूसरा शब्द बोलेगा। उर्दू में 'अलिफ' के बाद 'बे' और अंग्रेजी में 'ए' के बाद 'बी' बोलेगा।

संसार मे बहुत से मनुष्य हैं, किन्तु हल अक्षर भी कोई नही बोल सकता। बत्तीस व्यंजन और दस स्वर माने गये हैं। व्यंजन अक्षर वह कहलाते हैं जो स्वर की सहायता से बोले जा सके और स्वर की सहायता के बिना न बोले जा सकें। स्वर वह कहलाते हैं, जिनके उच्चारण मे किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता न हो।

चौथी बात यह है कि प्रत्येक जीव को अपने किये कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं। किसी की बुद्धि या शक्ति नही जो अपने कृत कर्मों के परिभोग से छुटकारा प्राप्त कर सके। जिसने जो कर्म बाँध लिये हैं, उसका बाप भी उसे उन कर्मों के फल-भोग से नही बचा सकता। चाहे कोई राजा हो, चक्रवर्ती हो, देव हो या इन्द्र हो, चाहे तीर्थङ्कर ही क्यों न हो, कर्म किसी को नही छोडते। रामायण के अनुसार राम ने बाली को तीर मारा तो भागवत में लिखा है कि कृष्ण महाराज को भी पैर मे तीर लगा और पार हो गया। तीर मारने वाला पास मे आया और रोने लगा। उसे रोता देख कृष्णजी बोले-रोओ मत, मैं बदला चुका कर अब शरीर त्याग रहा हूँ। लोग कहते हैं—

समरथ को नहिं दोष गुसाई ।

तो फिर कहो, यह क्यो हुआ ? कृष्णजी से बढ कर सामर्थ्यशाली और कौन था ? वह भी कहते हैं कि मैंने रामावतार मे बाली को बाण मारा था, तो उसके फल स्वरूप आज मुझे बाण खाकर शरीर त्याग करना पड़ता है। इससे यही सिद्ध होता है कि कृत कर्मो का फल अवश्य भुगतना पडता है। कोई कर्म-भोग से नही बच सकता ।

मुसलमानो के यहा भी एक जिक्र चला है। उनके आखिरी मुहम्मद पैगम्बर हुए तो वे एक दिन थोडा सो गए। तब खुदा का हुक्म आया कि क्या हमने तुम्हे सोने के लिए भेजा है ? खुदा के इस उपालम्भ से पैगम्बर को इतना दु.ख हुआ कि वे एक गड्ढे मे जाकर, खड़े-खडे तीन रोज तक रोते रहे। उन्होने खुदा से प्रार्थना की-मुझ से जो गुनाह हो गये है, उनके लिए माफी दो।

कहो भाइयो, जो लोग दिन-रात टागे लम्बी करके पडे रहते हैं, उनका क्या हाल होगा ? हमारा कहना यह है कि अपने किये हुए गुनाहो का बदला भोगना ही पड़ेगा।

एक बार इन्द्र ने भगवान् महावीर से कहा-प्रभो ! नाना प्रकार के कष्ट आपके सामने आएंगे। उनका निवारण करने के लिए मैं आपकी सेवा मे रहना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो रहूँ। तब भगवान् ने क्या उत्तर दिया था ? मालूम है आपको ? भगवान् ने फर्माया कि-इन्द्र ! मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। तीर्थंकर परायी सहायता से अपना मार्ग

तप नहीं करते। मुझे अपनी ही भुजाओं से भव-सागर पार करना है।

कहने का आशय यह है कि किसी भी तीर्थंकर, अवतार या पैगम्बर की ताकत नहीं कि वह किये हुए कर्मों का फल न भोगे। जो मिर्च खाएगा उसके मुँह में जलन हुए बिना नहीं रहेगी। कोई शराब पीले और चाहे कि नशा न आवे, यह कभी हो सकता है ? भाई, इस विषय में किसी की भी नहीं चलती है। कोई कहे कि यह बड़े आदमी हैं। इन्हें गुनाह नहीं लगेंगे, परन्तु गुनाह उसको तो क्या, उसके बाप को भी नहीं छोड़ने वाले हैं। जहर अपना काम करेगा और अमृत अपना काम करेगा। चाहे भैरूजी हो या बालाजी हो, पीर हो या और कोई हो, किसी की ताकत नहीं कि गुनाह करके कह सके कि मैं उसका फल नहीं भोगूंगा। कर्मों के आगे न शनिजी की चलती है, न सूरजजी की चलती है।

कहा जा सकता है कि परमात्मा स्वयं कोई अपराध करे तो उसे फल भोगना पड़ेगा या नहीं ? इसका उत्तर यही है कि परमात्मा कोई अपराध नहीं करता है। वह वीतराग है, सर्वज्ञ है, समस्त कामनाओं से अतीत है, निर्मोह है, अशरीर है, समस्त यौगिक व्यापारों से अतीत है। वह कृतकृत्य है। वह कोई अपराध कर ही नहीं सकता। और जो अपराध करता है वह परमात्मा ही नहीं है। तो —

कर्मरेखा न मिटे, लाख मिटाये कोई।
अक्लो दानिश की यहां, पेश न जाए कोई।

कोई अपनी इच्छा से दुखी नही होना चाहता। कर्म दो तरह के है अच्छे और बुरे। बुरे कर्मो का नतीजा बुरा और अच्छे कर्मो का नतीजा अच्छा होता है। कोई बुरे कर्म करके अच्छा नतीजा पाना चाहे सो भी नही हो सकता। इसके सिवाय कोई अपने कर्म फल को दूसरो को नही दे सकता। कोई किसी के कर्म फल को ले भी नही सकता। वेटे के भाग्य मे राज्य है तो उसकी शक्ति नही कि वह अपने बाप को दे दे। कई लोगो के पास लाखो--करोड़ो की सम्पत्ति होती है। मरते समय तक वे परोपकार मे एक पैसा नही लगाते। किन्तु यदि गोद लिये लडके के भाग्य मे सम्पत्ति नही है तो एक पैसा भी नही रहेगा। इसके विपरीत कई पिता अपन पुत्र के लिए एक पैसा भी नही छोड़ जाते, किन्तु आज भी कई ऐसे लखपति मौजूद है। बात यह है कि दीपक जहा कही जाता है वही उजाला करता है। इसी प्रकार पुण्यवान् भी जहा जाता है, वही उजाला हो जाता है। जहा पुण्यवान् पुरुप का पादन्यास होता है, वही नवनिधान का निर्माण हो जाता है। पापी उसे हाथ लगा दे तो सोना भी मिट्टी बन जाता है।

किसी के घर मे अशर्फिया गड़ी थी। जब उसके यहां नादारी आई और उन अशर्फियो को आवश्यकता हुई तो उसने उन्हे निकाल लेने का विचार किया। जमीन खोद कर जो चरु निकाला तो देखा कि चरु मे बिच्छू ही बिच्छू है। वह समझ गया कि इस समय मेरा भाग्य अनुकुल नही है। उसने १५-२० बिच्छुओ को डोरे से बांधा और दुकान पर लटका दिया। कोई भी उन लटके बिच्छुओ को देखता वही पूछता--इन

विच्छुओ को क्यों लटका रक्खा है ? ऐसा प्रश्न करने वालों के विषय मे वह सेठ समझ लेता कि ये भी मेरे ही समान भाग्यहीन हैं !

थोडे दिनो वाद एक भङ्गिन उस दुकान पर आई। उसने देखकर पूछा—सेठजी ! दुकान पर यह अशर्फियाँ क्यो लटका रक्खी हैं ? इस प्रकार प्रश्न सुनते ही सेठ समझ गया कि यह भङ्गिन भाग्यशालिनी है। वह उसे अपने घर ले गया। उसने भङ्गिन से वह जमीन खुदवाई तो चरु निकला। चरु को देखकर भङ्गिन ने कहा—अरे, यह तो अशर्फियो का चरु है ! सेठ बोला—मुझे विच्छू नजर आते हैं और तुझे अशर्फियाँ दिखलाई देती हैं। अच्छा, तुम भी ले जाओ और मुझे भी दे दो। तव भङ्गिन ने दो धोवे भर कर सेठ के पल्ले मे डाले। वह अशर्फियाँ, अशर्फियाँ ही वनी रही।

भाइयों ! तकदीर का काम ऐसा जबर्दस्त है। मगर क्या आप यह भी जानते हैं कि यह तकदीर क्या चीज है ? कर्म ही तकदीर कहलाते हैं। कर्म यदि शुभ हैं तो कहा जायगा कि तकदीर अच्छी है और यदि कर्म अशुभ है तो कहा जायगा कि तकदीर खोटी है ! ऐसा समझ कर शुभ कर्मों का उपार्जन करना चाहिए। शुभ कर्मों का उपार्जन करने के लिए प्राणियो को साता पहुंचाने की आवश्यकता है। अपनी शक्ति के अनुरूप दान करो, दया पालो, शील का पालन करो, तपश्चरण करो और अपनी भावना को प्रतिक्षण पवित्र वनाये रखने का प्रयत्न करो। अगर तुम्हारे पास लाखो का धन है और सन्तान नही है तो उस धन का उपयोग क्या होगा। किसी लडके को दत्तक ले लोगे तो वह उसका

उपभोग करेगा। इससे तुम्हारा क्या उपकार हुआ? तुम्हे क्या लाभ हुआ? तुम तो यो ही कोरे हाथ जाओगे न? और अगर सन्तान है तो वह भी अपना भाग्य लेकर आई है। तुम्हारे धन से उसके भाग्य का निर्माण होने वाला नही है। तुम्हारी सम्पत्ति उसे सुखी नही बना सकती। अगर वह सुखी होगी तो अपने कृत कर्मों से होगी। इसलिए अगर तुम्हारे अन्तःकरण मे अपनी सन्तान को सुखी बनाने का मिथ्या अहकार है तो उसका परित्याग कर दो। सब अपने अपने कर्मों के अनुसार ही सुख दुःख पाते हैं।

पाँचवी बात यह है कि परमाणु का, जिसे अग्रेजी भाषा में 'एटम' कहते हैं और जिसे हम अत्यन्त सूक्ष्म मानते हैं, कोई छेदन नही कर सकता। परमाणु को कोई अग्नि मे भी नही जला सकता। ऐसा करने की शक्ति भी किसी मे नही है।

छठी बात यह है कि लोक मे रहने वाली वस्तुए लोक मे ही रहती हैं। लोक की कोई भी वस्तु अलोक मे नही पहुचाई जा सकती। किसी की सामर्थ्य नही कि वह ऐसा कर सके।

जैन आगमो मे आकाश के दो भेद किये गये है–(१) लोकाकाश और (२) अलोकाकाश। आकाश के जिस भाग मे जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल द्रव्य स्थित हैं, उस भाग को लोकाकाश कहते हैं और जिस भाग मे सिवाय आकाश के और कुछ भी नही है, जो असीम और शून्य आकाश है, वह अलोकाकाश कहलाता है। यहा यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि जीव और पुद्गल ही गतिशील द्रव्य हैं।

वही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं। यद्यपि स्थानान्तर मे गमन करने की शक्ति इन दोनो द्रव्यो में है, फिर भी गमन करने मे निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है। जैसे रेल के ऐंजिन के चलने मे लोहे की पांत सहायक होती है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल की गति मे धर्मास्तिकाय सहायक होता है।

यह बतलाया जा चुका है कि धर्मास्तिकाय की सत्ता लोकाकाश तक ही सीमित है अतएव यह भी स्वाभाविक ही है कि जीव और पुद्गल की गति भी लोकाकाश तक ही सीमित हो। यही कारण है कि अलोकाकाश एकदम सूना आकाश ही है। उसमे आकाश के अतिरिक्त और कोई वस्तु नही है।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—लोक के किनारे खडा होकर कोई मनुष्य अपना हाथ लम्बा कर दे तो उसका हाथ अलोकाकाश तक फैलेगा या नही ? भगवान् ने उत्तर दिया—नही, ऐसा कदापि नही हो सकता।

अलोकाकाश मे जाने की शक्ति किसी मे नही है। स्वर्ग, मोक्ष, नरक, आदि सभी गतियाँ और सभी योनियाँ लोक मे ही हैं।

इस प्रकार पूर्वोक्त छह बाते करन की किसी में शक्ति नही है। भाइयो ! यह केवली भगवान् का बतलाया हुआ सिद्धान्त है। यह कभी मिथ्या नही हो सकता। वीतराग की वाणी त्रिकाल-अबाधित है। इसमे लेश मात्र भी सन्देह नही करना चाहिए।

भविष्यदत्त चरित:—

भाइयों ! वीतराग भगवान् की वाणी पर श्रद्धा करने से और शक्ति के अनुसार उसका आचरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है, यह बात कथा के द्वारा समझाने के प्रयोजन से मैंने व्याख्यान के साथ भविष्यदत्त का चरित आपको सुनाया है। यह चरित मनोरंजन के लिए नही सुनाया जा रहा है और न समय विताने के लिए। कथा के द्वारा कही हुई बात सुगमता के साथ सभी समझ लेते हैं। इस विचार से ही आपको चरित सुनाया जा रहा है।

वीतराग-वाणी की श्रद्धा और आराधना करके भविष्यदत्त राजा का जीव स्वग मे उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान से विदित हो गया कि मेरा पूर्वभव का परिवार हस्तिनापुर मे है। यह जान कर वह अपना वैभव प्रदर्शित करने के लिए दिव्य विमान मे बैठ कर रवाना हुआ। साथ मे दोनो देव भी थे। जब तीनो देव हस्तिनापुर मे पहुचे तो विमान देख कर हस्तिनापुर निवासी चकित रह गए। सबको चकित देखकर देव ने अपना परिचय दिया। कहा—मैं भविष्यदत्त हूँ, यह कमलश्री है और यह तिलकसुन्दरी है। तप और सयम की आराधना करके हम स्वर्ग मे देव रूप मे उत्पन्न हुए हैं। और आप सबसे मिलने के लिए यहाँ चले आए है।

धर्म के फल का साक्षात् स्वरूप देख कर सब के हृदय मे धर्मप्रेम की वृद्धि हुई। सब ने उनकी प्रशसा की। तत्पश्चात् सब

के देखते ही देखते देव स्वर्ग को सिधार गये। कई सागरोपम तक उन्होने वहा स्वर्गीय सुखो का उपभोग किया।

स्वर्ग की स्थिति जब पूर्ण होने को होती है तो उनके गले की माला कुम्हला जाता है। उससे देवो को यह सूचना मिल जाती है कि अब च्यवन के दिन नजदीक आ गये हैं। सबसे पहले कमलश्री के जीव देव के गले की माला कुम्हलाई। नियत समय पर देव स्वर्ग से च्युत होकर राजकुमार क रूप मे गधर्वपुर नगर मे उत्पन्न हुआ। कालान्तर मे राजकुमार बड़ा हो गया। समस्त विद्याओ और कलाओ मे कुशल हो गया। उसका नाम वसुन्धर हुआ। युवावय मे आने पर उसे राज्य की प्राप्ति हुई और राजा वसुन्धर न्याय-नीति से प्रजा का पालन करने लगा।

कालान्तर मे शेष दोनो देव स्वर्ग से च्युत होकर वसुन्धर के यहा पुत्र रूप से उत्पन्न हुए, राजा ने देवपाल और महोपाल नाम रक्खा और खूब हर्ष मनाया।

राजा वसुन्धर ने दीर्घकाल तक राज्य किया। प्राचीन काल के राजा अगर राज्य का सुख भोगते थे तो परमार्थ को भूल नही जाते थे। प्राय. राजा लोग अन्तिम समय मे, जब पुत्र राज्य कार्य का सचालन करने योग्य हो जाता था तो, पुत्र को राज्य सौप कर आत्मकल्याण क लिए निवृत्तिमय जीवन व्यतीत करते थे। राजा वसुन्धर ने भी अपने पुत्र को यथासमय राज्य का उत्तरदायित्व सौप दिया और श्रीधर नामक मुनि की सेवा मे उपस्थित होकर सयम धारण कर लिया। उत्कृष्ट सयम और घोर तपश्चरण करके मुनिराज वसुन्धर ने अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

राजा वसुन्धर के पश्चात् देवपाल और महीपाल राज्य का सुचारु रूप से सञ्चालन करने लगे। उनके पास प्रभूत ऋद्धि थी, राजकीय वैभव था और सुख की सभी सामग्री सहज ही उन्हे उपलब्ध थी। अतएव दोनो भ्राता परस्पर प्रीतिपूर्वक रहते हुए सांसारिक भोगोपभोग भोगने लगे। एक वार की वात है कि दोनो भाई वनक्रीडा करने के लिए वन में गये थे। वहा उन्होने एक मृगयूथ को देखा। मृग जगल का जीव है। भोला-भाला और भद्र-प्राणी है। वेचारा तृण खाकर अपने प्राणो की रक्षा करता है। प्रकृति-जीवी है। किसी का कुछ बिगाड़ नही सकता। फिर भी अज्ञान और मासलोलुप लोग उसका वध करने से नही चूकते ! कितनी निर्दयता और कितनी कठोरता है !

वन का मृगयूथ अपनी स्वाभाविक क्रीड़ा मे मस्त था। निर्भय था। स्वप्न मे भी आशका नही थी कि कोई दुर्घटना होने को है। मगर अचानक वहा एक व्याध आया और उसने तीर मार कर एक मृग के प्राण ले लिये। मृग वेचारा एक पल पहले किलोलें कर रहा था और दूसरे ही पल धराशायी होकर छट-पटाने लगा दूसरे मृग उसकी यह दशा देख भयभीत होकर भाग गये !

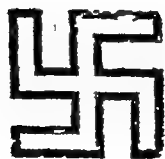
देवपाल और महीपाल इस करुणापूर्ण दृश्य को देखते ही रह गये। मृग की दशा देखकर दोनो भाइयो की आँखो मे आँसू आ गये। जीवन की क्षणभगुरता प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ी। उन्हे यह भी बोध हो गया कि अन्तिम समय मे कोई भी साथी-सगी, कुटुम्ब-परिवार काम नही आता। जब तक मृत्यु नही आई, तब

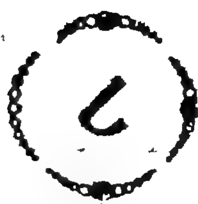
तक दूसरे लोग साथी हैं। मृत्यु आने पर कोई लोग साथ नही दे सकता ! ससार मिथ्या है, इस प्रपंच से मुक्त होने मे ही कल्याण है।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते उनके हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे उसी समय अपने महल मे लौट आये। राज-पाट त्याग कर दोनो ने संयम ग्रहण कर लिया और अपनी आत्मा का अप्रतिम तेज प्रकट करके सिद्धि प्राप्त की।

इस प्रकार भविष्यदत्त ने क्रमश. अभ्युदय की ओर अग्रसर होते-होते चरम अभ्युदय प्राप्त कर लिया।

१-११-४८ }





साधुता की निकष

स्तुतिः—

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाए ?

हे जिनदेव ! आप तीन लोक के अर्थात् तीन लोक के समस्त प्राणियों के कष्टों को हरण करने वाले हैं। प्रभो आपको नमस्कार हो !

हे वीतराग ! आप इस भूतल के निर्मल आभूषण हैं। प्रभो ! आपको नमस्कार हो।

हे जिननाथ ! संसार मे देव तो बहुत हैं, किन्तु आप तीनो लोको के देव हैं–परमेश्वर हैं। प्रभो ! आपको नमस्कार हो।

हे जिनेन्द्र ! आपने ससार रूपी समुद्र को सोख लिया है, अर्थात् चतुर्गति रूप ससार भ्रमण का अन्त कर दिया है। प्रभो ! आपको नमस्कार हो।

इस स्तुति मे आचार्य महाराज ने भगवान् को समस्त प्राणियो की पीड़ा का प्रणाश करने वाला प्रतिपादन किया है। इस पर यह आशका की जा सकती है कि क्या ईश्वर कर्त्ता है ? यदि ईश्वर कर्त्ता नही तो फिर दु खो का नाशकर्त्ता भी कैसे हो सकता है ? प्रश्न ठीक है। हमे सोचना चाहिए कि आखिर ऐसा क्यो कहा गया है ? बात यह है कि जैन धर्म अनेकान्तवादी धर्म है। वह विभिन्न दृष्टिकोणो से वस्तु तत्त्व की विवेचना करता है। तीर्थंकर देव ने अहिंसा का उपदेश दिया है, अहिंसा का अर्थ है–किसी प्राणी को पीडा न पहुंचाना। इसका आशय यह निकला कि प्राणी मात्र की पीडा को नष्ट करने का उपदेश देने के कारण भगवान् आर्त्तिनाशक है। दूसरे, तीर्थंकर भगवान् ऐसा मार्ग बतलाते है। जिससे कि शारीरिक और मानसिक सभी पीडाओ से प्राणी छुटकारा पा जाय। उदाहरणार्थ किसी रोगी को एक सुवैद्य ने रोग-नाश करने वाली औषध बतलाई। रोगी ने वैद्य का कहना मान कर औषध का सेवन किया और दु ख से छूट गया। अब रोगी उस वैद्य से कहेगा या नही कि—वैद्यराज ! आप मुझे

दुःख से छुड़ाने वाले हैं! यद्यपि औषध का सेवन स्वय रोगी ने किया है और औषध के प्रभाव से दुःख का अन्त हुआ है, फिर भी रोगी तो वैद्य के प्रति ही कृतज्ञता प्रदर्शित करता है! इसी प्रकार जीव भगवान् के उपदेश के अनुसार प्रवृत्ति करके दुःखों से मुक्त होते हैं, अतएव भगवान् दुःखो का नाश करने वाले कहलाते है ।

तीसरी बात यह है कि भगवान् अशरीर अवस्था को प्राप्त हो चुके है। अशरीर अवस्था-प्राप्त हो जाने पर वे किसी भी जीव को पीडा नही पहुचाते इस कारण भी उन्हे आर्तिनाशक कह सकते हैं।

इस प्रकार परमेश्वर जगत् के कर्त्ता न होने पर भी जगत् की पीडा के नाशक है। इन्ही अभिप्रायों से आचार्य महाराज ने भगवान् ऋषभदेव को आर्त्तिनाशक कहा है।

भाइयो! जब भगवान महावीर इस जगतीतल पर विराजमान थे, तब एक समय राजगृही के उद्यान मे पधारे। भगवान के चौदह हजार शिष्यो के शिरोमणि गौतम स्वामी उनके साथ थे। वे जाति से ब्राह्मण थे, किन्तु चौदह पूर्व के पाठी तथा बडे विद्वान, बुद्धिमान और भाग्यवान् थे। उस समय वे विनय पूर्वक भगवान से प्रश्न किया करते थे। उन्होने एक बार जीव, पुद्‌गल और काल के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। तब भगवान ने फर्माया- जगत् मे अनन्तानन्त जीव हैं, पुद्‌गल भी अनन्त हैं और काल भी अनन्त है। अनन्तकाल बीत गया है, वर्त्तमान मे बीत रहा है और अनन्त काल बीतेगा। न इधर का किनारा है, न उधर का

अन्त है। जो काल बीत जाता है, वह सदा के लिए ही बीत जाता है। वह किसी जगह जाकर जमा नहीं होता और दोबारा फिर नही आता।

कहा जा सकता है कि काल का बीतना दृष्टिगोचर तो होता नही है, फिर कैसे पता चले कि काल व्यतीत हो रहा है? ऐसा कहने वाले को समझना चाहिए--नौ महीने तक वह गर्भ मे रहा, बाद में बाल्यकाल गया, यौवन गया और बुढ़ापा आ गया। यह अवस्थाओ का भेद काल के बीते बिना नही होता। अतएव इसी से काल के बीतने का अनुमान लगाना चाहिए। नये का पुराना होता है, यह काल के बीतने का प्रमाण है। अगर व्यतीत न होता तो गर्भ मे से बच्चा निकले ही नही। बालक गर्भ मे से समय निकलने पर ही निकलता है। भाइयो! यह काल परिवर्त्तन रूप है! प्रत्यक्ष देख लो, एक दिन ऐसा था कि जोधपुर मे आप दौडे-दौडे फिरते थे। पर आज लाठी टेक-टेक कर चलना पड़ता है। एक दिन चार सीढ़ियां भी लाघ जाते थे और आज एक सीढ़ी भी उतरना कठिन हो गया है!

इस प्रकार बीतते-बीतते अनन्त काल व्यतीत हो गया है। मत समझना कि व्यतीत हुआ काल कही जमा हो रहा है। कुए मे से निकला हुआ पानी वाष्प बन कर कदाचित् उसी कुए मे आ सकता है, किन्तु जो काल व्यतीत हो चुका है, वह कदापि नही आ सकता। फिर भी काल का कभी अन्त नही हुआ और न होगा ही, क्योकि वह अनन्त है।

जैसे काल अनन्त है, उसी प्रकार जीवात्माएँ भी अनन्ता-

नन्त हैं। जीव एक होता तो सब से सुख दुःख अलग-अलग न होते। बल्कि एक के बी ए. पास होने पर सभी बी. ए. पास हो जाते। अर्थात् एक जीव के ज्ञान की वृद्धि होने पर सभी के ज्ञान की वृद्धि होनी चाहिए। एक सुखी हो तो सभी सुखी होने चाहिए। एक के दुःखी होने पर सभी को दुःख की वेदना होनी चाहिए। मगर ऐसे नही देखा जाता। इसलिए यही मानना युक्ति और अनुभव से सगत है कि सभी जीवो का अस्तित्व अलग-अलग है। जीव अनन्तानन्त होन के साथ अविनाशी भी है। वह एक शरीर का परित्याग करके दूसरे शरीर को धारण कर लेता है, एक योनि का परित्याग करके दूसरी योनि को ग्रहण करता हैं, भव भवान्तर करता है, किन्तु उसका नाश कभी नही होता है।

पुद्गल भी अनन्त है। पुद्गल दो प्रकार के है--अणु और स्कध। ये भी जगत् मे जमा ही रहते है। पुद्गल की भी अवस्थाओं मे परिवर्त्तन होता रहता है, किन्तु मूल द्रव्य ध्रुव रूप मे विद्यमान रहता है। आज एक पुद्गल कपडे के रूप मे है। कुछ दिनो बाद खाद के रूप मे परिणत हो जाता है। फिर गेहूँ या कपास या रुई का रूप धारण कर लेता है। फिर भी नाना परिवर्त्तन होते रहते है।

ससार में ऐसा कोई पुद्गल नही जिसे जीव ने आंखो से न देखा हो, नाक से न सूंघा हो या जिसे अपने शरीर के रूप मे परिणत न किया हो। और यह सब एक--एक बार नही अनन्त-अनन्त बार किया। यह जीव अनादि काल से अब तक समस्त पुद्गलो को अनन्तबार परिभोग कर चुका है। समस्त पुद्गल नाना रूप धारण करके जीव के उपयोग मे आ रहे है। पुद्गल

वही है और जीव भी वही है। संसार में न कोई नया पुद्गल, उत्पन्न होता है, न नवीन जीव ही उत्पन्न होता है। मात्र दोनों में परिवर्त्तन होता रहता है। जब कोई बड़ा परिवर्त्तन होता है तो उसे लोग उत्पन्न होना कह देते हैं। इसी प्रकार विनाश के सम्बन्ध मे समझना चाहिए।

श्रीगौतम स्वामी ने दूसरा प्रश्न किया—जीव धर्मप्रतिष्ठित है, अधर्मप्रतिष्ठित है या धर्माधर्मप्रतिष्ठित है ?

भाइयो ! यहां जो विकल्प किये गये हैं, उनमें अखिल विश्व के समस्त जीवो का अन्तर्भाव हो जाता है। एक भी जीव इन विकल्पो से बाहर नही रह जाता। जैसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक—इन तीन विभागो मे सब जीवो का समावेश हो जाता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त तीन विकल्पो मे भी सब का समावेश हो जाता है।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान फर्माते हैं–हे गौतम ! जीव धर्म मे भी स्थित हैं, अधर्म मे भी स्थित हैं और धर्माधर्म मे भी स्थित हैं। महाव्रतधारी साधु और साध्वियाँ धर्म मे स्थित है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि साधु किसे कहते है ? क्या जो धोती, पगड़ी और अगरखी न पहने वह साधु कहलाता है ? अगर इन चीजों को छोड़ कर दूसरे प्रकार के कपडे पहन लिये है तो क्या इसी से कोई साधु हो जाता है ? नही। जिसने दूसरी तरह के वस्त्र धारण कर लिये हैं, उससे पूछना चाहिए कि आपने कौन-कौन से नियम धारण किये हैं ? पहले रेल मे बैठते थे और

अब रेल मे बैठना छोडा है या नही ? अगर कोई कहता है कि नहीं, रेल मे तो अब भी बैठते हैं, तो उससे कहना चाहिए कि फिर अकेले कपडे बदल लेने से कोई साधु नही हो सकता। पहले पीतल, तावे और चादी के बर्त्तन रखते थे और अब भी रखते है तो फिर त्याग क्या किया है ? धन-पहले भी रखते थे और अब भी रखते हो तो फर्क क्या पडा ? कोई कहे कि पहले ब्रह्मचर्य नही पालते थे और ब्रह्मचर्य पालते हैं तो भाई ! जहाँ धन है और भोजन-पान का विवेक नही है वहाँ भले कोई स्त्री को न रखता हो, पर उसका ब्रह्मचर्य पालना तो बडा ही कठिन है ! आखिर वह धन किस लिए रक्खा गया है ? जिसने विषय का परित्याग कर दिया हो, उसे धन रखने का क्या प्रयोजन है ? जो भोजन के लिए चादी और सोने के पात्र रखता है, समझना चाहिए कि उसकी विलासिता की मनोवृत्ति अभी तक बनी हुई है। और जब विलासिता की वृत्ति बनी है तो फिर ब्रह्मचर्य का पालन किस प्रकार सभव हो सकता है ? मेरे कहने का आशय यह न समझा जाय कि ऐसा कोई पुरुष ब्रह्मचारी हो ही नही सकता, मगर ऐसी स्थिति मे ब्रह्मचर्य का पालन सुकर नही है। ब्रह्मचर्य को पालने के लिए सयम और सादगी की तथा रुक्षवृत्ति की आवश्यकता होती है।

जिनके पहले भी घर था और इस समय भी घर है और उस घर का किराया भी आता है तो कहो साधु बनने का अर्थ क्या हुआ ? हां, एक ही फायदा हुआ कि पहले महाराज नही कहलाते थे और अब महाराज कहलाने लगे। मैं किसी की बुराई नही करना चाहता, पर साधुता का सही स्वरूप बतलाना चाहता हूँ। असल मे सोचना यह चाहिए कि सन्यासी बने या साधु बने

तो क्या अधिकता आई ? त्याग का परिमाण कितना बढा ? विरक्ति या अनासक्ति कितनी बढ़ी ? निराकुल भाव में कितनी वृद्धि हुई ? सयम का स्तर कितना ऊँचा उठा ? अगर शुद्ध हृदय से इन प्रश्नो का उत्तर सतोषजनक मिले तो समझना चाहिए कि कुछ अधिकता आई है, नही तो नही ।

ससार के रगड़े--झगडे छोड़ कर साधु का वेष धारण किया और फिर भी यदि हिंसा, असत्य, चोरी, कामवासना और परिग्रह का त्याग न किया तो क्या लाभ हुआ ? सच्चे साधु वही हैं जो इन पाँच पापों का सेवन करते नहा है, कराते नहीं हैं और करते को भला जानते नही है । साधु भोजन बनाते नही हैं और बनवाते भी नही हैं । बना-बनाया भोजन जहा मिल जाता है वहा से ले आते हैं और लाया हुआ भोजन दूसरे दिन के लिए रखते नही है ।

भाइयो ! दुनिया मे टेक अच्छी या सत्य अच्छा ! टेक पकडो तो आपकी मर्जी और सत्य पकडो तो यह गुण जिनमे विद्यमान हो, उन्ही को साधु समझो । इसी मे आपकी भलाई है ।

साधु गृहस्वामी की आज्ञा हो तो ही उसके मकान में ठहरते है । आज्ञा न हो तो नही ठहरते हैं । जब आज्ञा पाकर किसी गृहस्थ के मकान मे ठहर जाते हैं तो वहाँ से रवाना होते समय गृहस्थ को उसका मकान संभला कर जाते हैं, ऐसा नही कि पिछली रात को ही रवाना हो जाएँ ।

साधु मठ, दुकान, हवेली, हाथी, घोड़ा, तोता, मैना, कुत्ता, गाय, भैंस आदि कुछ भी नही रखते । अगर ऐसी चीजे रखते

लगें तो फिर ईश्वर का भजन करने का अवकाश ही उन्हे न मिले ? फिर गृहस्थ और साधु मे अन्तर ही क्या रह जाय ? जो पशुओं का पालन-पोषण करने मे ही लगा रहेगा, वह साधु के योग्य चिन्तन-मनन, ईश्वरोपासना आदि नही कर सकता।

साधु चोरी नही करते। यही कारण है कि उन्हे गृहस्थ लोग ऐसे मकानों मे भी ठहरा देते है, जहा तिजोरियां भरी पड़ी रहती हैं और जरा भी सन्देह नही लाते। एक बार ऐसा मौका आया कि हमे एक दुकान में ठहराया गया। उस दुकान मे तिजोरियां पड़ी थी और उनमे सोने के जेवर भरे थे। यह सब देखकर मैंने दुकान के मालिक से कहा—भाई, हमारे पास किसी को आने की मनाई नही है और तरह-तरह के लोग आते-जाते हैं। हम इधर-उधर जाएँ और तुम्हारी कुछ हानि हो जाय तो हम उत्तरदायी नही हैं। श्रेष्ठ यही हो कि हमे ठहरने के लिए कोई दूसरी जगह बतला दो। कदाचित् हमारी मौजूदगी मे भी कोई कुछ उठा ले जाय तो हम मनाही नही करते और बाद मे कोई उसका नाम पूछे तो उठा ले जाने वाले का नाम भी नही बतलाते! फिर भी हमे वही उतारा गया!

आखिर लोग हमे ऐसी जगह क्यो उतार देते हैं? इसी कारण तो कि लोगो को विश्वास है कि यह चोरी नही करते। हजारों-लाखो का माल घरो मे पडा रहता है और हम बेखटके घुस जाते हैं। किसी को हमारे ऊपर अप्रतीति नही होती, क्योकि वे जानते हैं कि यह त्यागी हैं।

रास्ते मे नदी, तालाब, कूप आदि मिलते हैं, परन्तु प्यास

लगी हो तो भी सचित्त जल का उपयोग नही करते। मर जाना मजूर मगर कच्चे पानी से दूर ! कोई कह सकता है कि जगल में कौन देखता है ? मगर हम कहते है कि साधुपन दिखलाने के लिए नही है। साधुता अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए अगीकार की जाती है। यदि कोई वहुरूपिया की तरह साधु का स्वांग वना लेता है तो भले ही उसे विना मेहनत किये रोटी के टुकड़े मिल जाएँ, मगर मोक्ष नहीं मिल सकता।

जूते पहिरना नही, साइकिल, मोटर या रेल की सवारी करना नही, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, चंडू, चरस आदि पीना नही, अग्नि छूना नही, और किसी भी कुव्यसन का सेवन करना नही, यह सव साधुओ के लिए अनिवार्य नियम हैं। हम वाल स्वयं उखाडते हैं, विहार करते समय मजूर से वजन नही उठवाते हैं और सूर्य की साक्षी से विहार करते हैं। कोई कहे कि सूर्योदय के पश्चात् विहार करने से धूप लगती है, तो तुझे इतनी उतावल क्यों है ? क्या तेरा कोई काम कही हर्ज हो रहा है ? दो-दो कोस का ही विहार कर ! अधिक दौड़ा-दौड करने की तुझे क्या आवश्यकता है ? वल्कि जल्दी-जल्दी लम्वा विहार करने से तो ईर्यापथ भी नही शोधा जा सकता। साधु को तो चार हाथ जमीन आगे की देख कर, जीव-जन्तु की रक्षा करते हुए चलना चाहिए। जल्दी-जल्दी चलने की आवश्यकता ही क्या है ? जव यहाँ पहुँच गये सो पहुँच गये और न पहुँचे तो न सही !

यह साधुपणा वह पणा नही, जो खरबूजे का खाते हैं।
उसमें है मजा इसमें न मजा, कोई वीर ही पार लगाते है॥

याद रक्खो, यह साधुपना है, कोई खरबूजे का पानी नही है। जिसकी शक्ति हो वह ले और शक्ति न हो तो न ले ! यहाँ किसी प्रकार की जवर्दस्ती नही है। हम शहर मे मूडते हैं मगर हमारी पद्धति के अनुकूल न चले तो जगल मे ही छोड देते है।

तो आशय यह है कि जो पाच मूल व्रतो का पालन करता है और पूर्वोक्त उत्तर गुणो का भी पालन करता है, वह धर्म मे स्थित जीव कहलाता है। ऐसे उच्च चारित्र का पालन करना सरल नहीं है। कोई शूरवीर ही इसका पालन कर सकता है। समग्र भारतवर्ष मे और विदेशो मे भी खोज डालो, ऐसी रीति का पालन करने वाले अन्यत्र नही मिलेगे। जो मेरे-तेरे मजहब की जिद पकड कर बैठे हैं, उनकी बात निराली है, किन्तु जो सच्चाई की तलाश मे है, उनसे मैं यही कहूँगा कि ऐसी रीति-नीति का पालन दुनिया मे बहुत कठिन है !

कदाचित् किसी को यह खयाल हो कि यह अतिशयोक्ति कर रहे है, आत्मप्रशसा कर रहे है और इसमे सत्य नही है अथवा थोडा है तो वे एक दो मास हमारे साथ रह कर देख ले और परीक्षा कर देखे। उनकी परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाए साधु समझे और यदि अनुत्तीर्ण हो जाए तो साधु न समझे। जिस साधु के मूल गुणो मे त्रुटि हो वह साधु कहलाने योग्य नही है, अलवत्ता उत्तर गुणो मे न्यूनाधिकता रहती है।

साधु का धर्म नही कि वह यह कहे कि मैं सर्वोत्कृष्ट संयम का पालन करने वाला हू और दूसरे यों ही हैं। हमारे साधु अच्छे और तुम्हारे साधु बुरे, ऐसा दावा करना भी मिथ्या है। वास्तव

मे साधु वही है जो साधु के धर्म का, आचार का, संयम का पालन करता है। जिसने यो ही वस्त्र बदल लिये हैं, उसमें और गृहस्थ मे क्या अन्तर है ?

दूसरी श्रेणी मे अधर्म प्रतिष्ठित जीव आते हैं। जो हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह आदि पापो का सेवन करते हैं, वे अधर्मी हैं। जो रात्रि मे भोजन करते हैं मांस-मछली का भक्षण करते हैं, मदिरापान करते हैं, दूसरो को धोखा देते हैं, डाका डालते हैं, और इसी प्रकार के अन्य कुत्सित कर्म करते है वे भी अधर्मी जीवो की ही श्रेणी मे गिने जाते हैं। साधु के जो कार्य बतलाये गये हैं, उनसे एकान्त विपरीत कार्य करने वाले अधर्मी हैं। जो कहते है कि हमारे शास्त्र मे झूठ बोलने का निषेध किया गया है, और गाय का मास तक खा जाते हैं, जो शकर-कंद की तरह मछलियो को भर्त कर खा जाते हैं, वे अधर्म प्रतिष्ठित जीव हैं। ठाकुरजी के दर्शन करने जाते हैं और कहते हैं कि दया धर्म का मूल है, मगर दूसरे जीव को मार कर खा जाते हैं। ऐसा करने से धर्म का मूल ही नष्ट हो गया तो धर्म कहां रहा ? दर्शन करने से क्या हुआ ? याद रक्खो, जो मछलियां बेचने का व्यापार करता है, मछलियां पकडने का जाल बनाता और बेचता है, और ऐसे ही हिसाकारी अन्य कार्य करता है, वह अधर्मी जीव है। ऐसे जीव ससार मे अनन्त है। इनका कल्याण नही हो सकता। वे जब इस श्रेणी मे से निकल कर धर्म प्रतिष्ठित की श्रेणी में आएंगे, तभी उनका कल्याण होगा।

तीसरी श्रेणी धर्माधर्म प्रतिष्ठित की है। जो जीव कुछ हिंसा

का त्याग करते है और कुछ नही करते, कुछ सत्य बोलते हैं और कुछ असत्य भी बोलते है आंशिक रूप मे पाप-कर्म का परित्याग करते है, वे इस तीसरी श्रेणी में गिने जाते हैं ।

भाइयो ! जो पापो को पूरी तरह या आँशिक रूप मे भी त्याग नही करता वह बिना लगाम का घोड़ा या बिना अकुश का हाथी है । वह स्वच्छद होकर अधर्म का आचरण करता है । उसे आत्म कल्याण की परवाह नहीं है । अतएव मै आपसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप हमारी श्रेणी मे नही आ सकते तो कम से कम श्रावक के व्रतो को ही धारण करो । इस श्रेणी मे आ जाओगे तो नरक और तिर्यंच गति से छुटकारा पा जाओगे । पहली श्रेणी मे तो हर्गिज मत रहो । हमारा काम आपको उपदेश करना है सो कर रहे हे । मानना या न मानना आपका काम है ।

चाहे मानो न मानो खुशी आपकी,
हम मुसाफिर यों कह कर चले जाएंगे ।
खिदमते धर्म पर जो कि मर जाएंगे,
नाम दुनिया में रोशन वो कर जाएंगे ॥

(इस उपदेश को सुनकर एक पति-पत्नी ने आजीवन ब्रह्मचर्य को अंगीकार किया)

हम चले जाएंगे और पीछे से पहरावनी रूप में विज्ञापन छापे जाएंगे ! किन्तु हमारे विरोध मे किसी को कुछ कहना हो तो सामने ही कह दे । इस समय उसका समाधान भी किया जा

सकता है। और पीठ पीछे ही कहना हो खुशी आपकी। साधु तो प्राणी मात्र पर क्षमाभाव रखता है। निन्दा करने वाले और प्रशसा करने वाले पर साधु का समभाव होता है।

किसी ब्राह्मण के लडके ने पानी में एक बिच्छू को देखा। लडके को दया आ गई। उसने बिच्छू को पानी में से निकालने के लिए उसे अपनी हथेली पर ले लिया। बिच्छू ने स्वभावगत सस्कार से प्रेरित हो हथेली मे डक मार दिया। लड़के ने उसे दूसरी हथेली पर लिया तो बिच्छू ने उसमें भी डक मार दिया। यह देख दूसरे लोगो ने उस लडके से कहा—अरे भोले, इस शैतान को फैक क्यों नही देता? यह तो स्वभाव से ही विषैला है। इसके साथ भलाई करने से क्या लाभ है?

लडके ने कहा—जब यह डंक मारने का अपना स्वभाव नहीं छोडता तो मैं अपना दया करने का स्वभाव कैसे छोड दू?

इसी प्रकार साधु का धर्म दया करना और क्षमा रखना है। ससार मे भाति-भाति के लोग है। कोई साधु का सत्कार-सन्मान करते हैं तो कोई अपनी आदत के आधीन होकर अपमान करने से भी नही चूकते। मगर साधु सबको एक ही समान दृष्टि से देखते हैं। 'साधु का धर्म क्या है' सुनिये—

कोईक वन्दत कोईक पूजत, कोईक भाव स भच्चन,
कोईक आप लगावत चन्दन, कोईक धूरि उड़ावे ततच्छन।
कोइ कहे ये तो मूरख दीखत, कोइ कहे ये तो वड़े विचच्छन,
'सुन्दर' काहू पै राग न रोस हो, सो सुध जानिये साधु के लच्छन॥

साधु का धर्म यही है कि वह सब पर क्षमाभाव रक्खे। जैनागम यही बात कहते हैं और दूसरे भी यही कहते है। कहा है.—

सौच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम कंटगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसी करे ॥
हओ न संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा, भिक्खू धम्मं समायरे ॥

कानो मे वाण की तरह चुभने वाली, कठोर और पीड़ा जनक भाषा को सुनकर साधु चुप चाप रहे और उसकी उपेक्षा कर दे। उस भाषा को अपने मन मे भी न लावे-उस पर विचार भी न करे।

कोई गालिया देकर या अपशब्द कह कर ही सन्तोष न करे और मारपीट करने लगे तो भी साधु क्रोध न करे और न अपने मन को मलीन करे। क्षमाभाव को कल्याणकारी समझ कर अपने धर्म का पालन करे।

इसी धर्म का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। हम जो साधुओ की निन्दा न करने की बात कहते हैं, वह इसलिए नही कि निन्दा से हम डरते हैं, या निन्दा को हम सहन नही कर सकते या निन्दा से वचना चाहते हैं। वल्कि इसलिए कहते हैं कि साधु की निन्दा करने वाला व्यर्थ ही पापकर्मों का वन्ध करता है। उसे पाप से वचाने के उद्देश्य से ही हमारा यह कथन है कि पीठ पीछे निंदा

करने से कुछ लाभ नही है। अगर कोई त्रुटि किसी साधु में देखो तो कहो अवश्य, परन्तु सद्भावना से कहो। उसके सामने कहो या उसके गुरु के सामने कहो। यह अच्छा नही कि सामने कुछ न बोलो और बाजार मे ढिंढोरा पीटते फिरो। इसमे जिसकी निन्दा करते हो, उसका तो कुछ बिगाड़ नही होगा और निन्दा करने वाले की आत्मा का ही अधःपतन होगा। इसलिए हे भाइयो! आप से बन सके तो किसी के गुण ग्रहण करो और न बन सके तो चुपचाप रहो। किन्तु पाप मत करो। यह मनुष्य-जन्म और यह व्यक्त भाषा बार-बार मिलने वाली नही है। हम तो सत्य बात कहते हैं, मानना अथवा न मानना आपकी इच्छा पर निर्भर है।

सत्य धर्म यह सब को सुनाये जाएंगे ॥ टेर ॥
मानो न मानो मर्जी तुम्हारो,
हम अपना फर्ज बजाये जाएंगे ॥

हो सकता है कि कोई बात हमारी समझ से सत्य हो और दूसरा अपने दृष्टिकोण से उसे असत्य समझता हो। ऐसी स्थिति मे यही उचित हो सकता है कि या तो वह अपने दृष्टिकोण की सत्यता हमे समझा दे या हमारे दृष्टिकोण को आप समझ ले। मगर दृष्टिकोण की विभिन्नता को आधार बना कर विरोध की कल्पना कर लेना और फिर बुराई-भलाई करते फिरना न सभ्यता है, न शिष्टता है। यह बात हमारे लिए ही न समझें, वरन् व्यापक रूप मे सभी के लिए समझनी चाहिए।

बहुत-से भाई श्रीसघ मे फूट डालने का प्रयास करते है। उन्हें सचेत और सावधान हो जाना चाहिए। सघ मे अनैक्य उत्पन्न करना, अशान्ति पैदा करना घोर पाप है। ऐसा करने वाला व्यक्ति सत्तर कोड़ा कोडी सागरोपम की स्थिति वाला मोहनीय कर्म बाधता है। उसे अपने पापो का जन्म-जन्मान्तर मे फल भोगना पडेगा। भाई! चक्रवर्त्ती की भी शेखी धूल मे मिल गई तो तू क्या चीज है? जिसने गुरु का कहना नहीं माना वह चक्रवर्त्ती भी (ब्रह्मदत्त) सातवे नरक मे गया। उसके पास दुनियां की सर्वोत्कृष्ट विभूति थी, किन्तु वह उसे बचा नही सकी। इसलिए मेरा कहना मानो कि श्रीसंघ में फूट न डालना। समस्त श्रीसंघ को परस्पर मे प्रेम पूर्वक रह कर अपने धर्म की आराधना करनी चाहिए।

हम ज्ञान की झडिया लगाए जाए गे,
ऊगे न ऊगे भूमि धर्म है॥

भाई! पानी का काम बरसने का है। जमीन अच्छी होगी तो अकुर निकल आए गे और ऊसर होगी तो ज्यो की त्यो रहेगी। उपदेश के सम्बन्ध मे भी यही बात है। उपदेश किसके लिए है:—

लगे ताल झंकार लगे तेवल के टाची,
लगे सिह के बोल, लगे सायर के सांची।
लगे सूर्य का ताप, लगे चदा की ठारी,
लगे वृक्ष के फूल, लगे प्रीतम को प्यारी॥

लगत-लगत फल वो लगे, उस फल को पंछी चुगे।
बैताल कहे विक्रम सुनो, जो मूरख नर के क्या लगे ?॥

भाई ! उत्तम जीव को धर्म की बात रुचिकर होती है। जो कोई धर्म की बात मानेगा, उसका कल्याण होगा। हमारा काम सुनाना है और सुनाने मे हम कोई पक्षपात नही करते। सब को समान भाव से सुनाते है। मानना न मानना श्रोताओं की मर्जी पर है। मगर इतना फिर भी कहना है कि मैं जो कुछ भी कहता हूँ, अपने मन की बात नही कहता। मैं तो वीतराग भगवान् के उपदेशो को ही दोहराता हूँ। भाषा मेरी है और मूल भाव ज्ञानियो के हैं। ज्ञानियों के उपदेश को मानने से आपका अक्षय कल्याण होगा और भविष्य मे आपके लिए आनन्द ही आनन्द होगा।

भविष्यदत्त चरित—

देखो, भविष्यदत्त के चरित पर आदि से लेकर अन्त तक दृष्टिपात करो। उसने पुण्य का उपार्जन किया था तो आगामी जीवन मे उसे सब प्रकार की सुख--सामग्री प्राप्त हुई। मगर क्या भविष्यदत्त किसी भी जन्म मे उस सुख-सामग्री मे लिप्त होकर अपने शाश्वत कल्याण को भूला ? नही। जब उसे उपदेश श्रवण करने का अवसर मिला तभी उसके चित्त मे वैराग्य की तरगे उठने लगी और उसने प्राप्त राज्य को तृण की तरह त्याग दिया। इस प्रकार वह अपनी आत्मा को क्रमश निर्मल बनाता चला गया और अन्त मे परम कल्याणमयी सिद्धि का स्वामी बना।

भाइयों ! आप जो पुण्य रूप पूंजी लेकर आये हैं, इसे धर्माचरण करके बढाइए। यही भविष्यदत्त चरित सुनने की सार्थकता है !

भविष्यदत्त चरित की प्रशस्ति *

संवत हजार दो तीन साल के माहीं,
महाराज उदयपुर चल कर आयाजी।
जब महाराणा भूपालसिंह अगता पलवायाजी ॥
जब पोष सुदी एकम थी आनन्दकारी,
महाराज सघ ने हर्ष वधायाजी ।
फिर वहाँ से चल कर गाव उठाले आया,
महाराज हुआ उपकार सवायाजी।
इतने मे तो महाराणा का संदेशा आयाजी ॥
पन्द्रह ठाणों से नाहर मगरे आया,
महाराज भूप को ज्ञान सुनायाजी ।
जितने भी दिन वहाँ रहे जीववध बंद रखायाजी ॥
गुरु हीरालाल प्रसाद चौथमल गाया,
महाराज पुण्य से सुख प्रकटायाजी ॥

दोहा:—

भविष्यदत्त का चरित यह, सुने सुनावे कोय ।
सुख–सम्पति पावे सही, आनन्द मंगल होय ।।

* यह प्रशस्ति जैन दिवाकरजी द्वारा रचित पद्यमय भविष्यदत्त चरित से उद्धृत की गई है ।

२१–११–४८ }





स्तेय का साम्राज्य



स्तुतिः—

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल—
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्,
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तम्,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

आचार्य महाराज ने प्रभु आदिनाथ की महिमा को प्रकट करने के लिए भगवद् भक्तो की महिमा यहा प्रदर्शित की है । जब

भगवान् की भक्ति करने वालो की महिमा भी असाधारण और आश्चर्यजनक हो तो उनकी भक्ति के पात्र भगवान् की महिमा का तो कहना ही क्या है ? जिसके मुनीम और सेवक का ऐश्वर्य विपुल हो, उस सेठ के ऐश्वर्य की बात ही निराली होगी। इसी अभिप्राय से यह पद्य रचा गया है।

इस पद्य मे बतलाया गया है कि—झरते हुए मद से जिसके कपोल अर्थात् गण्डस्थल मलीन और चचल हो रहे हैं और मद-माते भौरे उन गण्डस्थलो पर आ-आ कर जिसका क्रोध बढा रहे हैं, ऐसे ऐरावत हाथी के समान, निरकुश हाथी को सामने आता देख करके भी हे प्रभो ! आपके भक्तो को भय नही होता ।

बदर चचल होता है, तिस पर यदि उसे मदिरा पिला दी जाय तब तो कहना ही क्या है ? और फिर कदाचित् उसे विच्छू ने भी डँस लिया हो तब तो पूछना ही क्या है ? ऐसी स्थिति में वन्दर की चचलता उग्रतम रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार प्रथम तो हाथी अपने बडे डीलडौल के कारण स्वभाव से ही भयंकर प्रतीत होता है, तिस पर वह जब मदोन्मत्त होता है तब कहना ही क्या है ? तिस पर भी जब भौरे आ-आकर उसे परे-शान करते हैं और वह क्रुद्ध हो जाता है, तब, तो पूछना ही क्या है ? ऐसी स्थिति मे तो यही प्रतीत होता है कि यह हाथी नही, साक्षात् यम है, मौत की विकराल मूर्त्ति है। ऐसा भयकर हाथी भी अगर सामने भागता आ रहा हो तो भी भगवान् के भक्तो को भय नही लगता ।

सोचना चाहिए कि भगवद्भक्तो मे इस प्रकार की

आश्चर्यजनक निर्भयता किस प्रकार आ जाती है ? इसका असंदिग्ध कारण तो कोई पहुँचा हुआ महान् भक्त ही बतला सकता है, किन्तु हमे भी अपनी बुद्धि के अनुसार सोचने का अधिकार है। अतएव हम भी इस संबन्ध मे अपने विचार प्रदर्शित करते है।

सच्चा भक्त वही है जिसने आत्मा के सच्चे स्वरूप को समझ लिया हो, जिसको आत्मा के स्वरूप की सच्ची झलक मिल गई हो और जिसने परमात्मा के साथ अपनी आत्मा का तादात्म्य स्थापित कर लिया हो। जिस भक्त ने यह उच्च स्थिति प्राप्त कर ली हो, वह बहिरात्मा नही हो सकता। वह शरीर को ही आत्मा नही मानेगा। वह आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी अनुभव करेगा और चिदानन्द स्वरूप समझेगा तथा शरीर को विनाशशील, पुद्गलपिण्ड और आत्मा से पृथक् मानेगा। इस प्रकार जिसकी आत्मा एवं शरीर के पृथक्त्व की श्रद्धा सजीव और सक्रिय होगी, वह शरीर के बिगाड से आत्मा मे कोई बिगाड़ नही समझेगा। पुद्गलपिण्ड के भग्न हो जाने पर भी उसे चिन्ता नही होगी। वह मृत्युञ्जयी हो जायगा। शरीर रहे तो क्या और न रहे तो क्या, दोनो अवस्थाओ मे वह समभाव मे स्थित रहेगा। मृत्यु उसके लिये भयजनक नही और जीवन उसके लिए मोहजनक नही होगा। ऐसी देहातीत दशा प्राप्त हो जाने पर साक्षात् यमराज भी उसे भयभीत नही कर सकता तो बेचारा गजराज उसे भयभीत कैसे कर सकता है ?

इस सम्बन्ध मे विचार करने की एक दूसरी दिशा भी है। अध्यात्मवेत्ताओ का अनुभव और कथन है कि वैर से वैर की

वृद्धि होती है। जो व्यक्ति वैर भावना को पूरी तरह विजित कर चुका है, जिसका अन्त करण निर्वैर बन गया है, वह अपने आध्यात्मिक प्रभाव से वैरवान को भी उपशान्त कर देता है। 'अहिसाप्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैरत्यागः' अर्थात् अहिसा की उच्च भूमिका पर पहुँचे हुए महापुरुष के आसपास रहने वाले प्राणी भी वैर को भूल जाते है।

भगभद्भक्त निर्वैर होता है। निर्वैर होने के कारण हिसक की क्रूरता उसके सामने परास्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में अगर भक्तजन के समक्ष क्रुद्ध हाथी भी निर्वैर बन जाय तो क्या आश्चर्य है? अपनी इस श्रद्धा के कारण भी भक्तजन हाथी के सामने आने पर भी भयभीत नही होते। वे जानते हैं कि हमारे हृदय मे हिसक भावना का लेश भी नही है तो हाथी हमे कोई हानि नही पहुचा मकता।

जिनके भक्तो की इस प्रकार विस्मयजनक शक्ति है, उन भगवान् की शक्ति के विषय में क्या कहा जाय?

ऐसे मदोन्मत्त पागल हाथी को वश मे करने की शक्ति किसी मे नही है। परन्तु हे आदिदेव! आपके नाम में वह ताकत है कि उसका स्मरण करने मात्र से मदोन्मत्त मोह रूपी हाथी भी क्षण भर मे वशीभूत हो जाता है। मोह रूपी हाथी बडा विषम होता है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी–जठरे शयनम्॥

वार-वार जन्म धारण करना, वार-वार मृत्यु का शिकार होना और वार-वार माता के पेट मे पडना मोह रूपी मतगज का ही प्रताप है। किन्तु भगवान् की भक्ति उसे अनायास ही पराजित कर देती है।

भगवान् ने मोह रूपी हाथी को वश मे करने के लिए उपाय वतलाया है-एक अकुश वतलाया है और वह अकुश है—सवर।

संवर के पाँच भेद हैं– (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अचौर्य (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह।

अहिंसा धर्म का मूल है और जैनधर्म का प्राण है। इसके विषय मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे प्रतिदिन ही कुछ न कुछ कहा जाता है। सत्य की महिमा भी अपरिमित है। सत्य का इतना महत्त्व है कि उसके अभाव मे अन्य व्रतो के अस्तित्व पर प्रतीति ही नही की जा सकती। जो असत्य का परित्याग नही करता और कहता है कि मैं अन्य समस्त व्रतो को अगीकार करता हू, उसके इस अङ्गीकार पर कौन विश्वास करेगा? प्रश्नव्याकरण सूत्र मे सत्य की वडे ही प्रभावशाली शब्दो मे प्ररूपणा और प्रशसा की गई है। वास्तव मे असत्य इतना भारी होता है कि उसके भार से आत्मा ससार-सागर मे डूब जाता है।

भगवतीसूत्र मे गौतम स्वामी के अनेक प्रश्नों का उल्लेख है। उसमे से एक प्रश्न है—भगवन् आत्मा भारी कैसे होती हैं?

इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान ने फर्माया—हिंसा, झूठ, चोरी आदि से आत्मा भारी होकर संसार-सागर मे गोते खाती

और डूबती है। आज चोरी के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश डालने की इच्छा है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र मे भगवान ने चोरी को महापाप बतलाया है। 'अदत्तादानं स्तेयम्' अर्थात् अदत्त—बिना दिया कोई भी पदार्थ, आदान करना—ग्रहण करना या ले लेना चोरी है।

जो व्यक्ति कपडा, छतरी, जूता आदि किसी भी वस्तु को चुराता है अथवा चुराने की भावना रखता है, वह चोर है, दूसरो की धन-दौलत को चुराने वाला तो लोक में चोर कहलाता ही है, पर धर्मशास्त्र तो बहुत बारीकी मे उतर कर वर्णन करते है। अतएव रास्ते मे पडा हुआ कंकर और दात खुजाने के लिए तिनका भी, अगर उसके स्वामी की अनुमति लिये बिना ग्रहण किया गया है तो उसे भी चोरी में परिगणित करते हैं। भले ही लोक मे यह चोरी नही समझी जाती और इसीलिए नीति की दृष्टि से वह हेय भी नही समझी जाती परन्तु धर्मशास्त्र के कानून उसे भी चोरी कहते हैं। यही कारण है कि अचौर्य महाव्रत का पालन करने वाले मुनिजन ऐसी तुच्छ वस्तुएँ भी अनुमति के अभाव मे ग्रहण नही करते हैं। अलबत्ता, अचौर्य अणुव्रत के पालन की ही प्रतिज्ञा लेने वाले श्रावको को ऐसी सूक्ष्म चोरी, जो लोक मे चोरी नही कहलाती और जिसे शासन दण्डनीय नही समझता, त्यागना अनिवार्य नही बतलाया गया है। परन्तु मुनियो के लिए वह भी त्याज्य है।

चोरी करना पाप क्यो है ? इस सम्बन्ध मे कहा गया है कि धन अपने स्वामी को प्राणो के समान प्रिय होता है। उस धन को

अनुचित तरीके से जो हरण करता है, एक प्रकार से वह उसके प्राणो का ही हरण करता है। अतएव चोरी पाप मे गिना गया है।

चोरी करने से, जिसके धन की चोरी की गई है, उसी को कष्ट होता हो सो बात नही है। चोरी करने वाला स्वय भी कष्ट का भागी होता है। चोरी राजकीय कानून से वर्जित है और वर्जित होनी चाहिए। अन्यथा मानव समाज मे लूटमार आदि का ऐसा दौर शुरु हो जाय कि क्षण भर भी कोई शान्ति से न बैठ सके। अतएव चोरी करने वाला जब पकडा जाता है तो सरकार उसे दण्ड देती है। प्राचीन काल में तो चोर के हाथ-पैर काट लिये जाते थे। आजकल यह दण्ड नही दिया जाता, फिर भी कारागार का दण्ड तो दिया ही जाता है।

मान लीजिए कि चोरी करने वाला पकडा न जा सका और बच गया तो भी क्या उसकी दुर्दशा नही होती ? परलोक की बात जाने भी दीजिए और इसी जीवन पर विचार कीजिए तो भी प्रतीत होगा कि चोर की आत्मा को क्षण भर भी शान्ति नहीं मिलती। उसके सिर पर पकडे जाने के भय का भूत सदा सवार रहता है। उसका चित्त पल--पल आकुल--व्याकुल बना रहता है। इस प्रकार चोरी करना बुरी बात है।

चोरी करने वाले के हृदय मे करुणा का वास नही होता। चोर इस बात का खयाल ही नही करता कि जिसके धन का अपहरण किया जायगा, उसे कितनी मार्मिक व्यथा होगी, उसके दिल मे कैसी तड़फन होगी ! इस बात की कल्पना उसे तभी आ

कती है जब चोरी के द्वारा संग्रह किया हुआ चोर का धन चोरी ला जाय ! वास्तव मे जिसकी चोरी होती है उसके दु:ख का ार नही रहता । हमने ऐसे लोग भी देखे हैं जो द्रव्य हरण हो ाने के कारण पागल बन गये है !

प्रश्नव्याकरणसूत्र में अठारह प्रकार के चोर बतलाये गये ैं । अर्थात् चोरी करने वाला चोर है, चोरी का माल लेने या ख़रीदने वाला चोर है, और चोर से चोरी कराने के लिये उसे भोजन पानी, वस्त्र या मकान आदि की सुविधा देने वाला भी चोर है । चोर को चोरी का साधन, जैसे रस्सा, बन्दूक, तलवार या कोई अन्य वस्तु देकर उसकी सहायता करने वाला चोर है, और चोर के निशान मिटाने वाला भी चोर है ।

रात्रि मे चोर चोरी करके जिस रास्ते से निकलता है, प्रातः काल होते ही उसके सहायक या हितैषी, उसके पैरो के निशान मिटाने के अभिप्राय से, उस रास्ते से, जानवरो को ले जाते हैं । जानवरो के पैरो के निशानों के कारण चोर के पैर के निशान मिट जाते हैं ।

जो व्यक्ति अपने जीवन को प्रामाणिकता के साथ, नीति के अनुकूल व्यतीत करना चाहता है, उसे चोरी के इन सब भेदो से बचना चाहिए ।

अदत्तादान के पाँच भेद है—(१) राज अदत्त (२) देव-अदत्त (३) गुरु-अदत्त (४) साधर्मिक-अदत्त और (५) गाथापति-अदत्त ।

(१) राज अदत्त—जो लोग राज्य के आदेश का पालन

नही करते और उसका उल्लघन करते है, वे चोर है। कट्रोल के इस जमाने मे आपने देखा होगा कि कितनो ही ने राज्य की आज्ञा का उल्लघन करके सजा पाई है। उन्हे 'कृष्णमन्दिर' का अतिथि बनना पड़ा। वे हजारों रुपये रिश्वत में देते हुए भी अपनी इज्जत नही बचा सके। इसीलिए तो 'विरुद्ध रज्जाइकम्मे' पाठ देकर भगवान् ने स्पष्ट कर दिया है कि अपनी स्वार्थलिप्सा की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा बनाये हुए प्रजाहितकर कानूनो का उल्लघन करना भी एक प्रकार की चोरी है।

(२) देव-अदत्त -भगवान् की आज्ञा से विपरीत चलना भगवान् की चोरी है। साधु और साध्वी को किस प्रकार की प्रवृत्ति करनी चाहिए, यह सब विधान शास्त्रो मे किया गया है। उसके विरुद्ध व्यवहार करना भगवान् की चोरी या देव-अदत्त है। अतएव अचौर्य महाव्रत का भलीभाति पालन करने के लिए यह आवश्यक है कि तीर्थङ्कर देव ने जो रीति-नीति बतलाई हैं और जो मर्यादा निर्धारित की है, उसके विरुद्ध आचरण नही करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह देव-अदत्तादान का भागी होता है।

(३) गुरु-अदत्त—साधु जिस गुरु की नेश्राय मे रहते हो, उसकी आज्ञा के बिना कोई काम करना अथवा गुरु को जतलाये बिना किसी वस्तु का उपयोग या उपभोग करना भी चोरी है।

घर मे भी एक मुखिया होता है। उसकी आज्ञा से ही सब काम चलते है। घर के सदस्यो का कर्त्तव्य है कि गृहमर्यादा की रक्षा के लिए उसकी अनुमति के बिना कोई काम न किया जाय।

सकी जानकारी के बिना काम होता रहे तो घर की व्यवस्था में ड़बड़ मच जाती है।

इसी प्रकार जाति की भी मर्यादाएं बंधी रहती हैं। जो लोग चोरी से छिप-छिप कर मांस भक्षण करते हैं, मदिरापान करते हैं या वेश्यागमन आदि निषिद्ध कर्म करते हैं, क्या वे चोर की श्रेणी मे नही हैं? निस्सन्देह वे अपनी जाति के चोर ही कहलाते हैं। याद रखना चाहिए कि चोरी के सम्बन्ध मे जो उपदेश दिया जा रहा है, वह एकदेशीय नही है। वह तो साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका के लिए समान रूप से लागू होता है।

(४) साधर्मी-अदत्त साधर्मी की आज्ञा के बिना उनकी किसी वस्तु को लेना, अर्थात् पूंजनी, नवकारवाली, पुस्तक, आसन आदि को बिना आज्ञा प्राप्त किये उठा लेना भी अदत्तादान में गिना है।

(५) गाथापति अदत्त–मालिक की आज्ञा के बिना किसी वस्तु को लेना गाथापति--अदत्तादान कहलाता है।

आप पानी पीते हैं। पानी मे असख्य जीव है। क्या आपने पानी के उन जीवो से आज्ञा प्राप्त कर ली है? यदि नही, तो क्या यह चोरी नही समझी जानी चाहिए? इसी प्रकार आप गाय, भैंस, या बकरी का दूध दुहते हैं। क्या आप उनसे अनुमति लेकर उनका दूध दुहते हैं? नही। तो फिर यह भी चोरी क्यों नही है? भाइयों! यह भी एक प्रकार की चोरी ही है। किन्तु बहुत से निर्दय बकरे और भैंसे को मार कर उनका मांस खा जाते है। ऐसा करने वाले हिंसा, झूठ और चोरी-सभी पापों के भागी होते हैं

भगवान् ने तो घास का एक तिनका बिना आज्ञा उठाना भी चोरी में परिगणित किया है।

शका—अगर आपको (साधु को) आवश्यकता पड़ जाय तो आप क्या करे?

समाधान—एक बार भगवान् महावीर से शक्रेन्द्र देवराज ने प्रश्न किया—प्रभो! देवो की वह कौन-सी वस्तु है जो मुनियो के उपयोग मे आ सके? तब भगवान् ने फर्माया-शक्रेन्द्र! तुम दक्षिण भरत के अधिपति हो। अतः तुम्हारे देश की वस्तुओ की कभी-कभी आवश्यकता पड़ती है। भगवान् का यह कथन सुन कर शक्रेन्द्र ने कहा—'प्रभो! साधुओ को मेरी सदा ही आज्ञा है।'

हम देखते है—घर की मालकिन कही मकडी बनती है तो कही चूहा मालिक बनता है। कही कुत्ता तो कही बिल्ली स्वामित्व का दावा करती है। कही राजा मालिक बनता है तो कही भगी मालिक बनता है। लेकिन देखना चाहिए कि वस्तुतः मालिक कौन है। वास्तव मे देखा जाय तो शक्रेन्द्र मालिक है। यह कोई किस्सा कहानी की बाते नही है। यह भगवतीसूत्र की बाते हैं। फिर भी लोक-व्यवहार का अनुसरण करके ही साधु प्रवृत्ति करते है और ऐसा ही करना उचित भी है।

कोई भी दो व्यक्ति गुप्त बाते कर रहे हों और तीसरा उन्हे सुनने का प्रयत्न करे और सुने तो यह भी चोरी है।

कोई आदमी अपने वस्त्रो मे इत्र लगा कर आया और

आपने इत्र की उस सुगन्ध को खींच-खींच कर सूंघना शुरू किया। तो बतलाओ क्या यह भी चोरी नहीं है? क्या आपने उससे इत्र सूंघने की आज्ञा ले ली थी? अगर नहीं ली तो इसे चोरी क्यों न कहा जाय ?

साफ नीयत नहीं रहे तू, चोरी करना छोड़ दे।
मान ले नसीहत मेरी तू चोरी करना छोड़ दे॥

दुनिया मे इज्जत की कीमत है। अगर तुम अपनी इज्जत रखना चाहते हो तो चोरी करना छोड़ दो। छोटी या बडी, कोई भी चोरी मत करो।

किसी का जेवर देख कर चोर की यह नीयत होती है कि कब यह इस जेवर को सूना छोड़े और कब मेरे हाथ लगे। चोर सदैव इधर-उधर ताक लगाता फिरता है। उसका संकल्प यह रहता है कि कैसे पराये माल पर हाथ साफ करूँ? किस प्रकार दूसरे की आँखो मे धूल झोंकूं ?

मगर जिसे लोग चोर के रूप मे पहचान जाते हैं, उसकी प्रतीति उठ जाती है। उसकी आबरू तीन कौड़ी की हो जाती है। अतएव जो अपनी और अपने पूर्वजों की इज्जत घटाना न चाहता हो उसे चोरी से दूर ही रहना चाहिए।

चोर की निगाह चील के समान होती है। जैसे चील माँस के टुकड़े की तरफ ताक लगाये रहती है, उसी प्रकार चोर चुराई जाने वाली चीज की तरफ ताक लगाये रहता है। वह अपनी भावना से और अपनी लोलुप दृष्टि से भी पाप का उपार्जन करता

रहता है। बस, उसकी एक ही चिन्ता रहती है कि कब निगाह चूके और कब हाथ साफ करे !

यद्यपि चोर छिपकर चोरी करता है और चुराये हुए माल को भी छिपाने के लिए बड़ी सावधानी रखता है, मगर कहावत है–'सौ बार चोर की तो एक बार शाह की !' कभी न कभी ऐसा अवसर आ ही जाता है कि वह पुलिस के फंदे मे फँस जाता है और पकड़ा जाता है। पहले तो वह चोरी करना स्वीकार नही करता, मगर पुलिस के देवता भी कच्चे नही होते। जब कोड़ो की फटकार पडती है और बेतो से चमडी उधडने लगती है, तो छठी का दूध याद आ जाता है। सब खाया-पिया निकल जाता है। आखिर चोरी स्वीकार करनी पडती है और दारुण दुर्दशा के साथ जेल मे जिदगी पार करनी पडती है।

ससार मे चोरी के इतने अधिक रूप प्रचलित हो गये है कि उन सब की गिनती करना भी कठिन है। कई लोग महसूल की चोरी करते हैं और आश्चर्य तो यह है कि ऐसी चोरी करने वालो मे कई इज्ज़तदार लोग भी सम्मिलित होते हैं।

कहा तक कहा जाय ? प्रजा की नैतिकता की रक्षा करना और वृद्धि करना जिन राज्याधिकारियो का कर्त्तव्य है, आज वे भी रिश्वत के रूप मे चोरी के शिकार हो रहे है। यद्यपि रिश्वत-खोरी पहले से ही चली आ रही है तथापि पिछले कुछ दिनो से तो उसमे बहुत वृद्धि हुई है भले ही लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर रिश्वत को चोरी मे न गिने, मगर वास्तव मे वह जघन्य श्रेणी की चोरी ही है। यह चोरी मनुष्य को अपने कर्त्तव्य से विमुख करने वाली

और आत्मा का पतन करने वाली है। इससे प्रजा को भी अत्यन्त कष्ट होता है और उसमे अनैतिकता बढ़ती है।

कई व्यापारी लोग पचासो तरह से चोरी करते है। कोई कपडा नापते समय गज सरका कर या हाथ सरका कर कपड़ा कम नाप देते है। कोई गज ही छोटा रखते हैं। कोई नापने और तोलने के बांट छोटे-बड़े रखते हैं। कई लोग तो माल लेते समय बाँटो मे मोम भी लगाये रखते हैं! धडा करने मे चोरी, माल लेने मे चोरी, माल देने मे चोरी! जहां देखो वही चोरी का साम्राज्य फैला हुआ है!

एक व्यापारी ने घी लेने के लिए कांटे का धड़ा करना चाहा। सेठानी ने सोचा धडा करते समय बांटो वगैरह मे यह की कर लिया करते हैं। आज एक तरफ बकरी का बच्चा ा दे, फिर देखे कैस चालाकी करते हैं!

काँटे के पलड़े पर रखते ही बकरी का बच्चा उछल-कूद लगा। सेठ ने दिखावे के तौर पर उसे रोकने की चेष्टा की, न से नही की और उसे भाग जाने दिया। सेठ उसे पकड़ कर के लिए भीतर गया और उसे पानी और फिर दूध पिला कर ले आया। इसके बाद उसने घी तोल कर ले लिया! इस जितना पानी और दूध उस बकरी के बच्चे को पिलाया सके तौल का घी उसने ले लिया। यह हैं चोरी करने के ढंग!

आज रिश्वत का बाजार गर्म है। रेल, मोटर, कस्टम और त आदि में सर्वत्र रिश्वत ही से काम होता है। रिश्वत के शायद किसी का काम नही चलता। ग्वालियर के माधव

महाराज ने तो एक बार कहा था कि मेरी अदालत का ताला चांदी की चाबी से खुलता है ! आज पुलिस का महकमा रिश्वत के लिए कितना बदनाम है, यह बात तो मेरी अपेक्षा आप शायद ज्यादा जानते होंगे ।

एक हाकिम साहब, जो जज के पद पर नियुक्त थे, दो आने की भी रिश्वत नही छोडते थे । उनकी अदालत मे एक गरीब किन्तु चालाक आदमी का कोई मामला पेश हुआ । मामला लम्बे समय तक खटाई मे पड़ा रहा । बीच-बीच मे वह गरीब कई बार जज साहब के पास पहुँचा । उसने आजीजी करके कहा—'दयानिधान ! मैं गरीब आदमी हूँ । मुझ पर दया कीजिए । मेरा काम कर दीजिए ।'

कसाई को कदाचित् दया आ सकती है, मगर घूसखोर हाकिम को दया आना कठिन है । उसने गरीब को रुखाई के साथ दुत्कार दिया और कहा—खबरदार जो फिर यहाँ आया !

लोगो ने सुना तो उस गरीब को सलाह दी—क्यों व्यर्थ पैर तोडता है । वह ऐसा जालिम हाकिम है कि रिश्वत लिये बिना अपने बाप का भी काम नही बनाता । वह ऐसा भैरू नही जो बिना धूप के प्रसन्न हो जाय ! काम बनाना है तो कही से कुछ प्रबन्ध कर ।

गरीब था, फिर भी उसने आठ आने का बढ़िया केसर डाला हुआ आम का मुरब्बा बाजार से खरीदा । फिर एक घड़े मे गले तक गाढा गोबर भर दिया और उसके ऊपर मुरब्बा रख

दिया। इसके बाद उसने घडे को ढक्कन से ढँक कर उसका मुँह बाँध दिया। फिर वह हाकिम साहव के घर ले चला।

घर के दरवाजे पर पहुँचा तो सिपाही ने रोक दिया, परन्तु जव उसे मालूम हुआ कि मुरब्बे का घड़ा है तो उसने भीतर चले जाने की अनुमति दे दी। हाकिम को पता चला तो मन ही मन वोला–'साला छह महीने के वाद आज माल लेकर आया है। कंजूस कही का ?' जव हाकिम को पता चला कि इसमे मुरब्बा है तो वहुत खुश हुआ। अपनी खुशी को भीतर ही भीतर दबा कर बोला-तुम्हारी मिसल पडी है न ? गरीव ने उत्तर दिया—'हाँ हजूर।'

हाकिम—अच्छा तो आज कचहरी मे जल्दी आ जाना।

गरीव जो आज्ञा।

अदालत का समय होने से पहले ही गरीब जा धमका। हाकिम ने आते ही चट हस्ताक्षर कर दिये। गरीव का काम बन गया। वह प्रसन्न होता हुआ घर लौटा और तान दुपट्टा सो गया।

हाकिम साहव के मुँह पर मुरब्बा लग गया। सुबह-शाम मुरब्बा खाने लगे। तीन दिन वाद वीवी साहिबा ने कहा--नीचे तो गाढा-गाढा न जाने क्या भरा है ? चम्मच डाल कर जो निकाला तो देखा कि यह तो गोबर है। आखिर वह घडा फिकवा दिया गया।

सन्ध्या समय हाकिम साहव घोडे पर सवार होकर हवा खाने निकले। उस गरीव की दुकान रास्ते मे ही पडती थी।

हाकिम साहब ने उसकी दुकान के सामने पहुँच कर घोड़ा रोका और कहा—अरे भाई तुम्हारे कागजात मे कुछ कसर रह गई है। कल उन्हे कचहरी मे ले आना।

गरीब ने कहा—क्षमा कीजिए साहब, कागजात में तो कसर नही रही है। मैने वकील को दिखला लिये है। कही घड़े मे तो कोई कसर नही रह गई है ?

अब हाकिम क्या कर सकता था ? उसके हाथ कट चुके थे। मन ही मन कुढता हुआ चला गया। सोचने लगा--यह सेर को सवा सेर मिला !

भाइयो ! रिश्वत लेना त्यागो। आपको सरकार से या आपके मालिक से वेतन मिलता है ! फिर रिश्वत लेना कितनी शर्म की बात है।

आपको सौ–दो सौ और हजार-बारह सौ रुपये मासिक तनख्वाह मिलती है। आपके मकान भी पक्के है। आपके पत्नी के पास आभूषण और उत्तम वस्त्र है। खाने को घर मे अनाज, घी और शक्कर भी है। फिर भी आप उस गरीब से रिश्वत लेने मे लज्जित नही होते जिसे टूटी-फूटी झौपड़ी मे रहना पड़ता है, जिसके पास पहनने को पूरे वस्त्र नही, जो भर पेट खाने को मोहताज है और जो अपनी स्त्री की लज्जा बड़ी कठिनाई से बचाये हुए है ! अरे, उसके बच्चे रोटी के टुकडे के लिए बिलबिला रहे हैं, वह दुखी है, अपाहिज है, करूणा का पात्र है। उसे करुणा का दान देने के बदले तू उस पर क्रूरता अभिशाप बरसाता है। उससे रिश्वत लेकर मरे को और मारता है ! उसे लूटने में

तुझे लज्जा नहीं, सकोच नही, झिझक नही है ! कहाँ सो गई है तेरी मानवता ! खेद, कहा चला गया तेरा सौजन्य ! दया भी दिल से निकल गई ! याद रख तू गरीबों को लूटेगा तो दैव तुझे भी लूटेगा और तेरा भाग्य फूटेगा।

अन्याय के धन से कभी,
आराम तो मिलता नहीं।
दीन दुनिया मे मना,
तू चोरी करना छोड़ दे ॥

भाइयो ! रिश्वत लेना अनीति है। यह बुरा कर्त्तव्य तेरे हक मे अच्छा न होगा। इससे तेरी इज्जत मिट्टी मे मिल जायगी। तुझे यम-दण्ड का भागी होना पडेगा।

आजकल मजदूरों मे भी चोरवृत्ति उत्पन्न हो गई है। मजदूर पूरी मजदूरी लेकर पूरा काम करने से जी चुराता है। और मालिक की आख बचा कर काम करने मे प्रमाद करता है तो वह भी चोरी के पाप का भागी है। मजदूर का अधिकार है कि वह अपना पूरा मेहनताना मॉग लें, परन्तु काम मे कोताई करना प्रामाणिकता से प्रतिकूल है। जो मजदूर पूरा पैसा लेकर पूरा काम करता है वह सदैव सुखी रहता है।

इस प्रकार आज के समाज की ओर जब दृष्टि दौड़ाई जाती है तो सर्वत्र चौर्यवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है। यह देश और समाज के नैतिक अधःपतन का प्रमाण है। समाज की नैतिक

भावना का स्तर ऊँचा उठना चाहिए । इसके बिना धर्म का विकास नही हो सकता ।

समाज मे नैतिकता का प्रचार करने के लिए सर्वप्रथम बडे-बूढ़े लोगो को नीतिपरायण बनने की आवश्यकता है। बडे-बूढे नीति और धर्म के अनुकूल चलेंगे तो उनकी सन्तति में भी वही विशेषता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु आज तो उल्टी गगा बहती देखी है। माँ—बाप स्वय अपने बच्चे को बेईमानी और चोरी सिखलाते हैं ।

एक बार एक लडका चार आम चुरा कर अपनी माता के पास लाया। माता ने लडके से पूछा—आम कहा से लाये हो ? लडके ने कहा—कूंजडी दूसरी तरफ देख रही थी और मैं उसके टोकरे मे से सफाई से उठा लाया। यह उत्तर सुनकर माँ ने सोचा – चलो ठीक हुआ। चार पैसे का लाभ ही हुआ !

धीरे-धीरे लडके की आदत बिगडती गई और कुछ दिनो मे वह एक नामी चोर हो गया। एक बार चोरी करते हुए वह पकड़ा गया। अदालत मे मुकदमा चला और पाँच वर्ष की कैद की सजा मिली ।

माता का हृदय अधीर हो उठा। आखिर तो माँ ठहरी न ! सन्तान के प्रति माता के हृदय मे नैसर्गिक वात्सल्य का प्रबल भाव विद्यमान रहता ही है। उससे प्रेरित होकर वह अपने लड़के से मिलने के लिए जेल पर गई। जेलर से आज्ञा प्राप्त की और लडके से मिलने को तैयार हुई। लडके को पता चला कि मेरी माता मुझसे मिलना चाहती है, तो उसने उससे मिलने की अनिच्छा

प्रकट की। जेल के कर्मचारी ने जब लड़के को बहुत समझाया तो उसने कहा – मुझे चोर बनाने वाली यह माता ही है। पहले-पहल चार आम चुरा कर लाने पर यदि माता ने प्रसन्नता प्रकट न की होती, बल्कि मुझे धमकाया होता, दण्ड दिया होता तो मैं क्यों चोर बनता और काहे को मेरी यह दुर्गति हुई होती !

भाइयो ! माता-पिता जब गैर जिम्मेदार हो जाते हैं तो कितना अनर्थ होता है, यह बात इस उदाहरण से समझनी चाहिए।

आप अपने परिवार को यदि सभ्य, सुसस्कृत, सदाचारी और सुखी देखना चाहते हैं तो अपने बालकों को धार्मिक शिक्षा दो। यह ऐसी बात है जो एक कान से सुन कर दूसरे कान से नहीं निकाल देनी चाहिए। अगर घर पर धर्म शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है तो ठीक, अन्यथा इसके लिए बाहर भेजने में भी सकोच नहीं करना चाहिए। साथ ही इस बात की चौकसी रक्खो कि आपका बालक बिगड़ैल बच्चों के साथ रह कर कही बुरी आदतें तो नही सीख रहा है ! बीड़ी, सिगरेट, दुराचार मे तो नही फँस रहा है !

आप अभी प्रतिदिन उपदेश सुन रहे है, मगर देखता हूँ कि आपके जीवन पर उसका कोई विशेष प्रभाव नही पड़ रहा है। इसका कारण यही जान पडता है कि आपने बचपन मे, अच्छे, संस्कार उत्पन्न करने वाली धार्मिक शिक्षा नही प्राप्त की है। जो भी हो, आप अपनी सन्तान का भविष्य अगर सुखमय बनाना चाहते है और चाहते हैं कि वे आपकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करे, तो उन्हे धर्मशिक्षा से वञ्चित मत रखना।

बगीचे में वृक्ष रोपा जाता है तो उसकी भी चौकसी करनी पडती है। वह इधर-उधर न झुक जाय, इस वास्ते उसके चारो ओर बाँस लगा देते हो। तो क्या बच्चो का मूल्य वृक्ष से भी कम है? नही, तो फिर उनके इधर-उधर झुक जाने का खयाल क्यो नही करते? भाइयो! बच्चो के इधर-उधर भी धर्मशिक्षा के बास लगाओ।

आपके नगर के श्रीमन्त भडारीजी धन्य हैं जिन्होने अपने घर पर बच्चो और महिलाओ को धार्मिक शिक्षण के लिए धर्माध्यापक की व्यवस्था कर रक्खी है। अध्यापक उन्हे सामायिक, प्रतिक्रमण, थोकडा आदि सिखलाते हैं। हम देश--देशान्तर में भ्रमण करते रहते हैं, किन्तु भंडारीजी के यहा धार्मिक शिक्षा की जसी व्यवस्था देखी है, वैसी अन्यत्र किसी गृहस्थ के घर नही देखी। आपको भडारीजी से सबक सीखना चाहिए, अन्यथा भविष्य मे पश्चात्ताप करना पडेगा। इसके विपरीत अगर आप स्वय नीति के अनुकूल व्यवहार करते हुए, धर्म की आराधना करते हुए अपने जीवन को पवित्र और घर के वायुमंडल को स्वच्छ बनाएंगे और सन्तान को धर्म का शिक्षण और सस्कार देंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा!

२८-८-४५ }



ब्रह्मचर्य

स्तुति :-

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि-हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेश देते समय, समवसरण मे जैसी विभूति आपकी हुई, वैसी किसी ओर की नही हुई। इसमे कोई

आश्चर्य की बात भी नही है, क्योंकि सूर्य की जैसी अंधकार का नाश करने वाली प्रभा होती है, वैसी प्रकाशमान तारागणों की नही होती। अनेक तारे मिल कर भी उस प्रभा को नही पा सकते; जो अकेले सूर्य की होती है। प्रभो! आपका बाह्य और आन्तरिक वैभव अद्वितीय हैं।

भगवान् ने लम्बे समय तक इस भूमण्डल पर विचर कर उपदेश दिया है। उनका उपदेश सर्वांगीण था। फिर भी संक्षिप्त से संक्षिप्त शब्दो मे कहा जाय तो यही कहा जा सकता है कि भगवान् के समग्र उपदेश का आशय मोह को पराजित करने का था। उन्होने जन्म-मरण के मुख्य कारण मोह पर स्वयं विजय प्राप्त की थी और जिन उपायों से मोह-विजय किया था, वही उपाय जगत् के जीवो को दिखलाये थे। भगवान् ने जो उपदेश दिया था, वह निरपेक्ष और निष्काम वृत्ति से ही दिया था, क्योकि वे वीतराग हैं। वीतराग भगवान् का उपदेश ही सच्चा और हितावह होता है। लोभ-लालच से प्रेरित होकर जो उपदेश देते हैं; उनके उपदेश मे निरपेक्षता नही होती, निखालिस सत्य नही हो सकता और वह प्रभावशाली भी वैसा नही हो सकता।

आजकल उपदेशक बरसाती मेढ़को की तरह बढ़ते जाते हैं। पर कथा-कहानी कह कर श्रोताओ का मनोरंजन कर देना या इधर-उधर की बाते बना देना और बात है तथा आत्मकल्याण की सच्ची बात कहना और बात है। सच्चा उपदेशक वही होता है जिसने अपने जीवन मे तदनुकूल साधना की हो। इस प्रकार उपदेश देना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। उपदेश से श्रोताओ के हृदय-कमल को विकसित करके उन्हे धर्म और त्याग-मार्ग की

ओर अग्रसर करना उपदेश का लक्ष्य होना चाहिए, जिससे वे अपनी आत्मा को उन्नत बना सके और अन्य प्राणियों के लिये सहायक और हितकर हो सकें।

दशवैकालिकसूत्र मे भगवान् ने फर्माया है कि व्याख्याता ऐसी कथा न करे जिससे सुनने वाले के हृदय मे विकृति उत्पन्न हो, राग-द्वेष की वृद्धि हो और इन्द्रियों की लोलुपता बढ़े। उपदेशक को ऐसा उपदेश नही देना चाहिए जिससे इन्द्रियां विषय सेवन के लिए उत्सुक हो जाएँ और चित्त में काम-वासना जागृत हो जाय। काम-वासना का जागरण होने से शरीर का राजा 'वीर्य' पतला पड़ जाता है और फिर शरीर के पतन मे भी विलम्ब नहीं लगता। अतएव कामोद्दीपन करने वाली कथा करना जहर का प्याला पिलाने के समान हानिकारक है।

प्रायः शृंगार रस के कवि नाना प्रकार की उपमाएं दे-देकर और रतिभाव बढाने वाली उक्तियाँ कह-कह कर ऐसे प्रसंग उपस्थित कर देते हैं, जिनसे श्रोताओ का चित्त विकृत होकर अधर्म की ओर अग्रसर हो जाता है। परिणाम यह होता है कि आत्मा मे मलीनता आ जाती है और कर्मों के कारण वह भारी होकर संसार-सागर मे डूब जाती है।

भगवतीसूत्र में पाप के अठारह कारण बतलाये हैं। उनमे स्तेय पाप के अनन्तर मैथुन की गणना की गई है। अतएव आज इसी के सम्बन्ध मे कुछ कहना है। दशवैकालिकसूत्र मे मैथुन के विषय मे कहा है—

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सियं ।
तम्हा मेहुणसंसग्गं, निग्गंथा वज्जयन्ति णं ॥
—दश. अ. ६, गा १७

अर्थात् – अब्रह्मचर्य, अधर्म का मूल है और बडे-बड़े दोषों को उत्पन्न करने वाला है। इसी कारण निर्ग्रन्थ मुनि मैथुन के सर्वथा त्यागी हैं ।

जिसके हृदय मे कामवासना उद्दीप्त होती है, वह पुरुष आँखे रहते भी अन्धा और कान होते हुए भी वहिरा हो जाता है । उसे हिताहित का भान नही रहता । वह विवाह करने के लिए न्याय–अन्याय का विचार किये विना ही धन कमाने का प्रयत्न करता है। यहां तक कि ससार मे ऐसा कोई जघन्य कृत्य नही जिसे कामी पुरुष करने को तैयार न हो जाय । वह कुल की मर्यादा का विचार नही करता, जाति के गौरव को भूल जाता हैं, लज्जा का परित्याग कर देता है और दुनिया भर की बेहयाई अपने ऊपर ओढ लेता है ।

काम वासना से प्रेरित होकर कई लोग विवाह करते है। पर यह कौन जानता है कि स्त्री उसकी इच्छा के अनुकूल मिलेगी या प्रतिकूल ? इसी प्रकार स्त्री को उसकी इच्छा के विपरीत पति मिल सकता है। फिर भी विवाह तो हो ही जाता है। सुख मिलेगा या नही, यह तो कोई नही जानता किन्तु विवाह होते ही अनेक प्रकार की चिन्ताएँ, व्याकुलताएँ और झंझटें प्रत्यक्ष अनुभव मे आने लगती है।

कदाचित् विवाह न हो सका या विवाहिता पत्नी का देहान्त हो गया अथवा काम वासना नियन्त्रित न हुई तो कई पुरुष-पिशाच ऐसे भी होते है जो परायी बहिन-बेटियों को धर्म भ्रष्ट कर देते है। कई बार तो माता के समान अपनी विधवा भौजाई को भी पतित करने से ऐसे लोग नही चूकते है।

और-और पापों की अपेक्षा यह पाप बड़ा जबर्दस्त है। दूसरे पापो का सिलसिला चालू नही रहता, परन्तु इस पाप का सिलसिला चालू रहता है और अनेक पापों को उत्पन्न करता है। व्यभिचार के फलस्वरूप कदाचित् कोई विधवा या कुवारी गर्भवती हो जाय तो उसके गर्भ को गिराने के लिए वैद्यो और डाक्टरो की शरण ली जाती है। सैकड़ो रुपये गर्भ गिराने वालो को भेट किये जाते हैं और भ्रूणहत्या का अत्यन्त घोर पातक उपार्जन किया जाता है।

एक मकान मे एक किरायेदार रहता था। जब वह मकान छोड़ कर गया तो पता चला कि उसके घर मे ८-१० बच्चो की हड्डियां पड़ी हुई है! वास्तव मे कामान्ध व्यभिचारी लोग जो पाप न कर डालें वही गनीमत है। ऐसे लोग ऊपर से धर्म का ढोंग करते हैं, परन्तु उनकी अन्तरात्मा अत्यन्त पतित होती है। जब उनका भंडाफोड़ होता है। तो लोग कहते हैं--अरे, हम इन्हें ऐसा नही समझते थे! यह तो महापापी निकला!

इस प्रकार दुराचारी पुरुष समाज मे गर्हित होता है, लोग उसकी जिंदगी पर थूकते है, उससे घृणा करते हैं और उसकी परछाई से भी परहेज करने लगते हैं। वास्तव मे काम वासना से

बड़े-बड़े दोष उत्पन्न होते हैं। भाइयो ! यह बहुत बुरा कर्म है।

यो तो समस्त इन्द्रियो को विषय की ओर से विमुख करके-पूर्ण इन्द्रिय विजय प्राप्त करके आत्म स्वरूप मे रमण करना ब्रह्मचर्य कहलाता है, परन्तु व्यवहार में स्पर्शनेन्द्रिय को जीतने के अर्थ मे ही ब्रह्मचर्य शब्द रूढ हो गया है। जिस संयतात्मा पुरुष ने स्पर्शनेन्द्रिय पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया होता है, वह अपने वीर्य की रक्षा करके ओजस्वी और तेजस्वी बन जाता है। उसके मुख मण्डल पर एक दिव्य आभा क्रीड़ा करती है। उसका मनोबल बहुत दृढ़ हो जाता है। उसके शरीर मे स्फूर्ति और शक्ति का वास होता है।

शरीर वीर्य के आधार पर ही टिका है। हम लोग जो भोजन करते हैं वह चालीसवे दिन वीर्य मे परिणत होता है। किया हुआ भोजन सर्वप्रथम रस के रूप मे परिणत होता है। रस से रक्त बनता है और दस तोला रक्त से करीब दो तोला वीर्य तैयार होता है। जिसने एक बार भी अपने वीर्य को नष्ट किया, उसने अपने एक मास के भोजन को नष्ट कर दिया समझो। जो लोग प्रतिदिन पाप कमाते है, उनको क्या दुर्दशा होगी, सो तो ज्ञानी ही जानें।

स्त्री या पुरुष, जो व्यभिचारी होता है, प्रायः क्षय जैसे भयंकर राज-रोगो के शिकार बनते है। राजयक्ष्मा से बचने का सर्वोत्तम-उपाय शरीर के राजा की-वीर्य की-रक्षा करना ही है। यदि राजा नही बचा तो बताओ कि प्रजा की क्या दुर्दशा होगी ?

वीर्य की रक्षा करने के लिए बहुत सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है। जिसने ब्रह्मचर्य पालन का संकल्प कर लिया हो, उसे अपने आहार-विहार के सम्बन्ध में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसे लोगो को सर्वप्रथम इस लालिया (जीभ) को वश मे करना चाहिए। जिह्वालोलुपता ब्रह्मचर्य-विघातिनी है। मादक और उत्तेजक भोजन करना, भूख से अधिक खाना, असमय मे खाना, रात्रि मे भोजन करना, आदि त्याग देना चाहिए। सात्विक भोजन के अतिरिक्त राजस और तामस भोजन से दूर ही रहना चाहिए। आहार पर नियंत्रण स्थापित किये बिना ब्रह्मचर्य का पालन करना बहुत कठिन है। अतएव ब्रह्मचारी को इस सम्बन्ध मे खूब पक्का होना चाहिए।

साधु भोजन के विषय मे परनिर्भर होते है। भिक्षा मे जितना और जैसा भोजन उपलब्ध हो जाता है, उसे ही वह ग्रहण करते हैं। अलबत्ता इस बात का ध्यान तो अनिवार्य रूप से रखना ही पडता है कि भोजन प्रासुक और एषणीय हो। ऐसी स्थिति मे कदाचित् सरस और पौष्टिक आहार मिले तो साधु को चाहिए कि वह उसे अगीकार न करे। गृहस्थ का भी कर्त्तव्य है कि साधु को विषय-विकार-विवर्धक आहार न देकर सात्विक आहार की ही भिक्षा दे। परन्तु कभी ऐसा आहार लेना आवश्यक हो जाय तो दूसरे दिन उपवास कर ले, वेला करले, या तेला कर ले, जिससे उस आहार के द्वारा होने वाली हानि से वह बच सके। सरस आहार का परित्याग करना ब्रह्मचर्य की गुप्ति है। इस गुप्ति के बिना ब्रह्मचर्य का पालन होना कठिन है। जो लोग आहार-विहार मे सावधान नही रहते, वे ब्रह्मचर्य का पालन

करने मे समर्थ नही होते। यही कारण है कि बडे-बडे तपस्वी भी ब्रह्मचय का पालन करने मे असमर्थ सिद्ध हुए और विलासिता के चक्कर मे फँस गये।

सुप्रसिद्ध महाराजा भर्तृहरि ने कहा है- विश्वामित्र, शृंगी और पाराशर जैसे बड़े-बडे महात्मा, जो हवा खाकर और पानी पीकर तपश्चर्या करते थे कामिनियो के कटाक्षो को देख कर मोहित हो गये और प्रणय की भीख माँगने लगे। सारी तपश्चर्या पर पानी फेर कर पतित हो गये।

जो लोग प्रतिदिन मालपुवा, रवडी और मोहनभोग उड़ाते है और फिर भी यह दावा करते है कि हम ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। महर्षि भर्तृहरि का कथन है कि विन्ध्याचल पर्वत को समुद्र मे तिराना और ऐसे लोगो का ब्रह्मचर्य पालना बरावर है, अर्थात् असम्भव है।

कंकर पत्थर खात है, उनको जागे काम।
सीरा सबूणी खात जो, उनकी जाने राम॥

यह विषय वासना ऐसी पिशाचिनी है कि एक वार प्रवेश करके फिर पिण्ड नही छोड़ती। एक वार चस्का लगा कि फिर छूटना कठिन हो गया।

किसी अगरेज ने शेर का एक बच्चा पाला। वचपन से ही उसे दूध पिला कर बड़ा किया। सयोगवश उस अगरेज के पैर मे चोट लग गई। वह सोया हुआ था। शेर अगरेज के पैर को चाटने लगा। उसके मुँह मे खून लगा और उसे वह बहुत रुचि-

कर लगा। शेर पैर को जोर-जोर से चाटने लगा। अंगरेज ने पैर हिलाया इस हरकत को देख कर शेर घुर्राने लगा। अंगरेज ने समझ लिया कि शेर को खून का स्वाद आ गया है और अब मेरी खैर नही है। उसने फिर पैर फैला दिया और शेर खून चाटने लगा। इधर उसने अपनी पिस्तौल सम्भाली और गोली दाग दी। शेर वही ढेर हो गया।

भाइयो! तुमने काम भोग रूपी शेर क्यो पाल रक्खा है? इसे पिस्तौल मारो, अन्यथा वह तुम्हे खा जायगा।

सब काम सरल हैं, पर कामदेव को जीतना कठिन है। धन्य हैं विजयकुवर और विजयाकुमारी, जिन्होने उभरते हुए यौवन मे, विवाहित होकर पति-पत्नी के रूप मे रहते हुए भी, अपने मन-मातग पर विवेक का दिव्य अकुश रक्खा और उसे स्वच्छद न होने दिया। वे आवाल-ब्रह्मचय का पालन करने में समर्थ हो सके।

कच्छ देश मे, कौशाम्बी नगरी में एक बहुत बड़े साहूकार रहते थे। उनके विजयकुवर नामक एक बुद्धिमान और विनीत पुत्र था। विजय एक बार मुनिराज का उपदेश सुनने गया। उपदेश मे ब्रह्मचर्य का प्रकरण चल रहा था। विषय बहुत रोचक और प्रभावजनक रूप मे प्रतिपादन किया जा रहा था। उसे सुनकर विजय को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत को अगीकार करने की इच्छा प्रकट की।

गुरु महाराज अत्यन्य दीर्घदृष्टि और विवेकशाली थे। उन्होने नवयुवक विजय की प्रार्थना का उत्तर देते हुए कहा—तुम

अपने पिता के एकलौते पुत्र हो और नवयुवक हो। सोच-समझ कर प्रतिज्ञा ग्रहण करो। भावावेश में ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा स्थायी नही होती। एक बार प्रतिज्ञा लेकर उसे भग करना अपनी आत्मा का घोर अध.पतन करना है। अतएव खूब सोच लो, समझ लो।

मुनिराज के इस प्रकार सावधान करने वाले वचन सुनकर विजयकु वर ने निवेदन किया - गुरुदेव ! मैं अपनी शक्ति को तोलने का प्रयत्न करूँगा, फिर भी कम से कम कृष्ण पक्ष मे तो ब्रह्मचर्य पालने का प्रण करा ही दीजिए। मैं इतना पामर नही जो महीने मे एक पक्ष भी ब्रह्मचर्य न पाल सकूँ।

गुरु महाराज विजय का धर्म प्रेम देख कर प्रसन्न हुए। उन्होंने उक्त प्रण करा दिया। विजय अपने घर लौट आया।

दूसरी तरफ विजयाकुमारी, किसी दूसरे साहूकार की कन्या, साध्वीजी का उपदेश सुनने गई। वहां भी ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान हुआ। विजयाकुमारी ने व्याख्यान सुन कर दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु माता--पिता के आग्रहपूर्ण अनुरोध को वह टाल नही सकी। फिर भी उसने शुक्ल पक्ष मे ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा अगीकार कर ही ली।

सयोगवश दोनो का विवाह हो गया !

नवदम्पत्ति के मिलन के लिए चौथे मजिल का एक भवन सजाया गया। जगह-जगह हीरा, मोती, पन्ना आदि जडे हुए थे। भवन की दीवारे सुन्दर चित्रमय कला कृतियो से सजीव-सी प्रतीत हो रही थी।

विजयकुंवर भवन में पहुँच चुके थे। इधर विजया भी स्नान आदि से निवृत्त होकर, सोलहों शृंगार सज कर तैयार हुई उस भवन में जा पहुँची। विजय उस समय रत्न जटित स्वर्ण-पर्यंक पर आसीन थे। विजया हाथ जोड़ कर, किंचित् क्रीड़ा युक्त स्मित के साथ अपने पतिदेव के समक्ष खड़ी हो गई।

त्रयोदशी की रात्रि थी। कृष्ण पक्ष चल रहा था। कुमार ने सोचा–तीन दिन कृष्ण पक्ष के शेष रह गये हैं। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना सत्यशाली पुरुष का परम कर्त्तव्य है। इस प्रकार सोचकर उसने अपनी दृष्टि नीची कर ली। उसने निसर्ग की प्रेरणा को पराजित कर दिया और अनुराग पूर्ण नयनों से विजया की ओर देखा तक नहीं।

भाइयों! सोहाग--रात के मधुर मिलन अवसर पर विजय का यह अनोखा व्यवहार देख कर विजया के अन्तस्तल मे कैसी-कैसी उर्मिया उठी होगी, उसका नवनीत-कोमल चित्त किस प्रकार आहत हुआ होगा, यह कौन जान सकता है?

विजया आश्चर्य के साथ विचारो की तरगो मे उतराने लगी। उसने पतिदेव से कहा:—

होवे जमाइ लाड़ला, ज्यों रूसे त्यों रंग।
विन अवसर को रुसवो, बालक वालो ढंग।

नाथ! जान पडता है, आप किसी गहरी चिन्ता मे डूबे है! अब मै आपकी अर्धांगिनी हूँ। मुझसे कोई बात छिपाने की आवश्यकता नही। मेरा और आपका सौभाग्य एवं सुख-दु.ख

एकाकार हो गया है। कृपया बतलाइए कि आप मुझ दासी की ओर दृष्टि भी नही फेरते ? क्या मुझसे कोई अपराध बन गया है ? अथवा आप मुझे छिटकाना चाहते है ? या मेरे माता-पिता ने आपकी इच्छाएँ पूर्ण नही की है ? आखिर आपकी इस गम्भीरता का क्या कारण है ? आप मुझे योग्य समझते हो तो कहिए।

भाग्यवानो ! आज भोग और ब्रह्मचर्य के बीच लडाई छिड़ी है। देखना है, किसकी विजय होती है ?

विजया कहती है—स्वामिन् ! मुझसे अज्ञानवश या असावधानीवश हथलेवा के समय कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करे। आप बड़े है। मैं आपकी सेविका हूँ। मुझे किसी प्रकार निभा लीजिए।

विजया के इतना कहने पर भी विजय मौन है। बोलने का साहस नही होता। यो तो कहावत है—'मौन सर्वार्थसाधनम्' अर्थात् मौन से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं।

विजया फिर कहती है-नाथ ! क्या मेरा कुल आपकी बराबरी का नहीं कि आप मुझसे घृणा करते हैं ? अथवा क्या आपकी इच्छा के विरुद्ध मैंने आपके गृह मे प्रवेश किया है ? आखिर आपके इस असामयिक रोष का क्या कारण है ?

विजय ने सोचा—अब मै चुप रहा तो अनर्थ हो जायगा। विजया न जाने क्या-क्या कल्पनाएँ करके व्याकुल हो रही है। इसे यथार्थ बात बतला देना ही उचित होगा। यह सोच कर विजय ने कहा—प्रिये ! तुम यह क्या कह रही हो ? न तुमसे

कोई अपराध हुआ है और न मैं तुम्हे हीन ही समझता हूँ। तुम मेरे हृदय की रानी हो। तुम्हारे माता-पिता ने मेरा जो सन्मान किया है, उसका ब्याज चुकाने की भी मुझमे शक्ति नहीं है। उनका दान मेरे लिए अनमोल है। उन्होंने अपने कलेजे का टुकड़ा देकर मुझे आजीवन कृतार्थ बना दिया है। तुम्हारे रूप मे मुझे महती शक्ति प्रदान की है। और तुम्हारे अपराध की तो कल्पना ही नही की जा सकती है। तुम निर्दोष और सुकुमार कुसुम हो, परन्तुः—

कहते कहते विजयकुमार रुक जाते है। वह सोचते है कि 'मेरे त्याग की बात सुन कर कहीं इस देवी के हृदय पर आघात न लगे।

विजया ने तत्काल प्रश्न किया—इस 'किन्तु' का क्या अर्थ है नाथ!

विजय बोले—देवी! मैं एक बार गुरु महाराज का उपदेश सुनने गया था। ब्रह्मचर्य के विषय मे उपदेश सुना। मेरा विचार भागवती जिनदीक्षा ग्रहण करने का हुआ, परन्तु माता-पिता की आज्ञा न मिलने के कारण विवश हो गया। अन्ततः कृष्ण पक्ष मे ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा धारण की है। आज त्रयोदशी है। तीन दिन के पश्चात् मैं तुम्हारा स्वागत कर सकूंगा देवी! इससे पहले नही।

विजयकुमार के स्पष्टीकरण को सुनकर विजया सन्न रह गई! उसके चेहरे पर म्लानता और गम्भीर विषाद झलकने लगा। उसका गला भर आया। आंखों मे आंसू भर गये।

विजया की यह विचित्र स्थिति देख कर विजयकुमार विस्मित हुए। उन्होंने कहा--देवी, क्या कारण है कि मेरी बात सुन कर तुम एकदम खिन्न हो गई? तुम्हारी समान धार्मिक सस्कार वाली महिला को क्या यह साधारण-सी बात भी सह्य नही है? मेरे इस प्रण को तुम अपने लिए इतना कष्टकर समझती हो?

विजया- नही, नाथ! बात इतनी नही इससे भी बड़ी है।

विजय—कैसे? तीन दिन तो चुटकियो मे निकल जायँगे।

विजया—मगर स्वामिन्! निकालना तो होगा मुझे सम्पूर्ण जीवन।

विजय—सो क्यो प्रिये!

विजया जैसे आपने कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा ली है, उसी प्रकार मैंने शुक्ल पक्ष मे ब्रह्मचर्य-पालन का प्रण लिया है। यही सोच कर मेरा हृदय भर आया। आपकी प्रतिज्ञा के तीन दिन समाप्त होते ही मेरी प्रतिज्ञा आकर खडी हो जायगी। जैसे आपको अपनी प्रतिज्ञा पालनी है, उसी प्रकार मुझे भी तो पालनी ही होगी।

स्वामिन्! एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है। मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना चाहती थी सो मेरी चाह पूरी हुई। संयोगवश यह योग मुझे मिल गया। अब कल मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा

दीजिए और आप दूसरा विवाह कर लीजिए। यह आत्मिक धर्म का प्रश्न है। इसका परित्याग न आप ही कर सकते हैं और न मैं ही।

भाइयों! मीरा ने राणाजी के लाख-प्रयत्न करने पर भी अपने आत्मधर्म का परित्याग नही किया था। उनसे यह प्रश्न किया जाता था—

मीरा थारे कई लागे गोपाल ?
थने राणाजी पूछे हाल ॥ मीरा० ॥

मगर भक्तो का भगवान् से क्या रिश्ता होता है, यह तो भक्त ही समझ सकते हैं। प्रपचो मे पड़ी दुनिया को भक्तों की भाषा ही समझ मे नही आ सकती।

विजया का यह कथन सुन कर विजयकुमार ने ओज के साथ कहा—प्रिये ! तुम विवेकवती हो, फिर भी मुझे जो परामर्श दे रही हो, उसमे विवेक की झलक नही दिखलाई देती। जहा मोह है वहाँ विवेक नही रहता। तुम्हारा मेरे प्रति जो मोह है, उसी के कारण तुम विवेक भूल गई हो। अन्यथा दूसरा विवाह करने का परामर्श क्यो देती ? तुम आजीवन पूर्ण ब्रह्मचारिणी होकर रहो, साध्वी जीवन व्यतीत करो और मैं दूसरा विवाह करके भोग-विलास मे मस्त रहू ! क्या तुमने मुझे विषय का कीड़ा समझ लिया है ? नारी यदि दूसरा विवाह नही कर सकती तो पुरुष को भी ऐसा करना शोभा नही देता। समाज ने चाहे जैसी मर्यादा बना रक्खी हो, परन्तु धर्म की मर्यादा तो दोनो के लिए

समान है शास्त्रो मे श्राविका और श्रावक का धर्म अलग-अलग प्रकार का नही है। फिर तुम मुझे क्यो दूसरा मार्ग बतलाती हो ? तुम्हारा और मेरा मार्ग एक ही होगा।

प्रिये ! खाने को दाख मिल जाय तो कौन मूर्ख निबौरी खाना पसन्द करेगा ? जिसे हीरा मिल गया हो वह हीरा छोड़ कर उसके बदले पत्थर क्यो उठाये फिरेगा ? कामधेनु को छोड़ कर छेरी को कौन अपने घर मे बाँधना चाहेगा ? मैं इतना मूर्ख नही जो दूसरा विवाह करूँ। विवाह का प्रयोजन कामवासना की तृप्ति करना ही नही है। नर और नारी आपस मे सहयोग करके अपनी-अपनी त्रुटियो को पूर्ण करे, यह विवाह का प्रयोजन है। अतएव हम दोनो ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भी पति-पत्नी के रूप मे रहेगे और अपने-अपने धर्म का पालन करेंगे।

बोलो, बोलो, अरे भ्रूणहत्या करने वाले हत्यारो ! बोलो ! जरा अपने इन पूर्वजन्माओ के पावन चरित पर विचार करो। विजय और विजया की क्या आयु है ? नवयौवन के भव्य भवन मे प्रविष्ट हुए है एक महल है, एक पलग है और दोनो वैभव की गोद मे क्रीड़ा करते रहे हैं। फिर भी क्या क्षण भर के लिए भी वे अपने प्रण से विमुख हुए ? क्या कामवासना ने उन्हे विवेक-शील और धर्म से च्युत किया ? क्या गजब का प्रणपालन है !

विजयकुमार बोले—एक बात ध्यान मे रखनी है। माता-पिता को हमारी प्रतिज्ञा का हाल मालूम होगा तो उन्हे बहुत विषाद होगा। अतः यह बात प्रकाशित न करना ही योग्य है। हम दोनो भाई-बहन की पवित्र भावना के साथ पति-पत्नी के रूप

मे रहे और जब माता-पिता को पता चले तभी दीक्षा ले ले।

विजया कुमारी इस पर राजी हो गई।

खेद है कि आज साठ वर्ष के बूढे, जो मौत के मुँह मे समा जाने को तैयार बैठे हैं, दूसरी और तीसरी शादी करने पर उतारू हो जाते हैं। इसके लिए वे अनेक प्रपंच रचते हैं और कन्याओं का जीवन खतरे मे डाल देते हैं। अगर इस पवित्र चरित से ऐसे लोग कुछ शिक्षा ले सके तो कितना अच्छा हो।

इसके बाद विजया और विजय रात्रि का समय धर्मध्यान मे व्यतीत करने लगे। कभी आत्मा का विचार करते, कभी कर्म सिद्धान्त की गुत्थियो को सुलझाते, कभी तत्त्वो की विवेचना करते, उनके सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर करते और कभी-कभी अन्य विषयो की चर्चा करते थे। ऐसा करते-करते बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

भाइयो ! इस भव्य भूमि भारत मे एक-एक से बढ कर आदर्श त्यागी और ब्रह्मचारी हो चुके है। उनमे प्रातः स्मरणीय महिलाएँ भी हुई हैं और पुरुष भी हुए हैं। पितामह भीष्म का नाम भारत का कौन सस्कारी पुरुष नही जानता ? कहाँ तक नाम गिनाये जाएँ ? राजीमती और अरिष्टनेमि की जोडी क्या कम प्रेरणा प्रदायिनी है ? तुम इन्ही के उपासक हो। इनकी जीवनी से प्रेरणा ग्रहण करो। अपने जीवन को ऊँचा उठाओ तो यह चरित और यह उपदेश सुनना सफल होगा।

उस समय विमल केवली भगवान् भूतल पर विराजमान

थे। भगवान् ने धर्मोपदेश में एक बार ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन किया। तब किसी श्रोता ने प्रश्न किया—प्रभो ! क्या ऐसा ब्रह्मचर्य पालने वाला इस पृथ्वी पर कोई विद्यमान है ? भगवान् ने उत्तर मे कहा हा, कच्छ देश की कौशाम्बी नगरी मे विजयकुमार और विजयाकुमारी बारह वर्ष से, दम्पत्ति के रूप मे रहते हुए भी, एक ही भवन मे वास करते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे है।

केवली भगवान् द्वारा की हुई यह प्रशसा सुन कर उस सभा मे उपस्थित राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार आदि को उनके दर्शन करने की अभिलाषा हुई। उन्होने सोचा-चलो, ऐसी महान् आत्माओ के दर्शन करे।

सब मिल कर कौशाम्बी आये। नगर मे पता पूछ कर सेठजी के घर पर पहुचे और सभी ने विनीत भाव से सेठजी के चरण छुए। सेठजी की समझ मे कुछ न आया कि आखिर यह लोग क्यो आये हैं और क्यो मेरे प्रति इतना आदर भाव व्यक्त कर रहे हैं ? वह हक्के--बक्के-से रह गये। उन्होने पूछा--बात क्या है ?

आगन्तुको ने कहा—श्रेष्ठिवर ! आप धन्य हैं, जिन्होने विजयकुमार और विजयाकुमारी की महामहिम जोडी सन्तान के रूप में पाई हैं। हम सब उनके दर्शन की अभिलाषा से आये है।

सेठ ने चकित भाव से पूछा—क्या विजय महात्मा हो गया है ?

उत्तर मिला—वड़े-वड़े तपस्वियों की तपस्या उनके चरित्र के सामने नगण्य है ! महात्मागण कठिन तपस्या कर करके जो फल प्राप्त कर पाते हैं, उन्होंने उसे गृहस्थी मे रहते हुए प्राप्त किया है। तपस्या का प्रधान फल मन और इन्द्रियो का निग्रह करना है और इस दृष्टि से उन्होंने वहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। उनके मुकाविले मे महात्मा भी कोई चीज नही है। स्वय विमल केवली भगवान् अपने मुखारविन्द से जिनकी प्रशसा करते हैं, उनकी महत्ता क्या कम हो सकती है ? वारह वर्ष से वे दोनो ब्रह्मचर्य की उग्र तपस्या कर रहे हैं और ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम तप है। कहा है—

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं।

सेठ को पता ही नही था कि पुत्र और पुत्रवधू ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। यह वात सुनी तो वह विस्मित रह गया। उसने उसी समय पुत्र और पुत्रवधू को वुलवाया।

दोनो सेठजी के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—पिताजी ! हमारी यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक आपको हमारे ब्रह्मचर्य पालन का पता नही चलेगा, हम गृहस्थी मे रहेगे, आपको पता लगते ही हम दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण करेंगे। इस प्रतिज्ञा के अनुसार अव दीक्षा का काल आ पहुचा है। कृपया आज्ञा प्रदान कीजिए।

आखिर दोनो ने दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

भाइयो ! ऐसे ही महात्माओ की हम तारीफ करते हैं। यहाँ व्यभिचारियो की तारीफ नही होती, वल्कि जिन्होने अपनी

विषय वासना को पवित्र भावना की भट्टी में भस्म कर दिया है, जिन्होने जीवन मे दिव्यता और भव्यता प्राप्त की है, वे ही यहाँ प्रशसा के पात्र हैं।

कुल की कीर्ति पर कलंक की कालिमा पोतने वाले कुलांगारो की कही कमी नही हैं, किन्तु अपने कुल की निष्कलक कीर्ति मे चार चाँद लगाने वाले, कुल की महिमा मे वृद्धि करने वाले महान् पुरुष विरले ही होते हैं।

मनुष्य जब बालक होता है तो समझा जाता है कि अभी इसके खेलने खाने के दिन हैं। यौवनावस्था मे आता है तो सोचता है कि धर्म करने के लिए बुढापा तो है ही, अभी जीवन का आनन्द उठा ले ! बहुतो का तो बुढापा ही नही आने पाता और वे परलोक के लिए प्रयाण कर देते है। जिनका बुढापा आता भी है, उनमे से कितने ऐसे है जो विषय-वासना से अपना पिण्ड छुडा कर धर्म की आराधना मे तत्पर होते हैं। हे वृद्ध पुरुषों ! अब भी अगर धर्म का आराधन नही करोगे तो कब करोगे ?

धर्म की आराधना की पहली शर्त विषय-वासना को जीतना है और विषयवासना मे कामवासना सबसे जबर्दस्त है। इसे जीते विना चित्त मे निराकुलता नही उत्पन्न हो सकती। अतएव जिसे अपना जीवन सफल बनाना है, अपना भविष्य कल्याणपूर्ण बनाना है, जिसे शान्ति की कामना है और जो असीम सुख का अभिलाषी है, उसे कामवासना पर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।

बहुत-से लोगों का खयाल है कि जीवन मे कामभोग की प्रवृत्ति अनिवाय है। मैं कहता हूँ कि ऐसा समझने वाले लोग

पामर हैं, निर्माल्य हैं, उन्होने आत्मा की सुदृढ सकल्पशक्ति को समझने का कभी प्रयास ही नही किया। अतएव ऐसे कायरता-पूर्ण विचारो को हृदय मे स्थान मत दो। अनेक महात्माओ के चरित्र हमारे समक्ष मौजूद हैं, जिनसे ऐसे हीन विचारो का खण्डन होता है। उनमें से एक चरित्र मैंने अभी सुनाया है। ऐसे निज चरित्रों को आदर्श बनाओ। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने का प्रयास करो। यकायक ऐसा न कर सको तो सीमित ब्रह्मचर्य का पालन करो और क्रमशः उसी दिशा मे अग्रसर होते चलो। ऐसे करोगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

९-११-४८ }





कृष्ण--जन्म



स्तुति :-

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

जिनेन्द्र देव ! खिले हुए स्वर्ण कमलो के समूह के सदृश कान्ति से युक्त, और बिखरती हुई नखो की किरणों से अत्यन्त

सुन्दर आपके चरण जहाँ पड़ते हैं, वहाँ देवगण कमलों की रचना करते जाते हैं। अर्थात् जिस जगह भगवान् अपने चरण रखते हैं, उस जगह देव कमलो की रचना कर देते हैं।

भगवान् ने अन्यान्य पुण्य प्रकृतियों के साथ, सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति का भी बन्ध किया था। यही कारण है कि स्वर्ग लोक से आकर देवगण भी भगवान् की सेवा किया करते थे।

इस ससार मे, भगवान् ऋषभदेवजी ही प्रथम महापुरुष थे, जिन्होने इस अवसर्पिणी काल मे, कर्मभूमि के आरम्भ के समय पहले व्यवहार मार्ग बतलाया और फिर चार तीर्थों की स्थापना करके मुक्ति का भी मार्ग बतलाया। तदनन्तर क्रमशः विभिन्न कालो मे तेईस तीर्थंकर और उत्पन्न हुए, जिनमे अन्तिम भगवान् महावीर थे। आज अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का शासन चल रहा है।

सभी तीर्थंकरों का उपदेश एक-सा था। सभी ने एक समान ही तत्त्वो का निरूपण किया। कहावत है—

सौ स्याणों का एक मता,
सौ मूरखो का सौ मता ॥

मत विभिन्नता का कारण अल्पज्ञता है। परिपूर्ण ज्ञान के होने पर किसी प्रकार का मत भेद नही रहता। अपूर्णता में अनेक कोटिया होती है, किन्तु पूर्णता स्वयं एक ही कोटि है। उस कोटि पर पहुँचने वालो मे किसी प्रकार का मतभेद नही हो सकता।

तीर्थंकर भगवान् परिपूर्ण ज्ञान को उपलब्ध करके ही उपदेश देते हैं, अतएव सभी तीर्थंकरो का उपदेश समान होता है।

इस कथन का आशय यह नही समझना चाहिए कि एक तीर्थंकर ने जिस शब्दावली का प्रयोग कर दिया, उसी को दूसरे तीर्थंकर दोहरा देते हैं। ऐसी बात नही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और पात्र के भेद से उनके उपदेश के बाह्य रूप मे अन्तर अवश्य पडता हैं, किन्तु उपदेश का अन्तस्तत्त्व समान ही होता है। जब वस्तु का मूल स्वरूप शाश्वत है और ज्ञान भी परिपूर्ण है तो उपदेश में पार्थक्य आ ही नही सकता। इस प्रकार सभी तीर्थंकरों ने यही उपदेश दिया है कि-हे भव्य प्राणियो! अपनी आत्मा को तिराना चाहते हो तो पाप से बचो। पाप से आत्मा भारी होकर ससार-सागर मे डूब जाती है।

गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया—प्रभो! पाप कितने हैं?

भगवान् ने फर्माया—अठारह प्रकार के।

भाइयो! इन अठारह पापो मे हिंसा, असत्य, स्तेय और मैथुन की तरह परिग्रह भी महान् पाप है। इससे आत्मा का अधःपतन होता है। बल्कि यो कहना चाहिए कि परिग्रह सब पापों का बाप है।

'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।'

जगत् के त्राता ज्ञातपुत्र भगवान ने मूर्छा-ममत्व भाव को परिग्रह बतलाया है। यह मकान मेरा, यह वस्त्र मेरा, यह शरीर

मेरा, यह शास्त्र मेरा, इस प्रकार किसी भी परपदार्थ में जो मेरे-पन का भाव है, यही परिग्रह है। परिग्रह मनुष्य को वहिर्मुख बनाता है और लोभकषाय को जागृत करके पथभ्रष्ट कर देता है।

भाइयो! आज मथुरा मे कस का किला खाली है। देहली में पाण्डवों का किला ऊजड़ हो गया है। जलेसर में राजा जरासंध का गढ़ टूटा पडा है। उनके बचे खुचे खण्डहरो में पक्षियों ने और दूसरे वनचरो ने अपना अड्डा जमा रक्खा है। फिर बताओ तो सही, तुम्हारे घर और खेत उनकी तुलना मे क्या चीज है? किस बिरते पर तुम दुनिया की चीजो को अपनी २ कह कर घमण्ड कर रहे हो? महलो और मकानो की बात छोड़ो और शरीर को ही लो। जिसे तुम अपना समझते हो और जो तुमसे अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक निकटवर्ती है, जिसके लिए सारा जन्म व्यतीत कर रहे हो, वही शरीर क्या तुम्हारा साथ देता है? नही। इसी कारण मुनिजन शरीर पर भी ममता नही रखते। भगवान ने इसीलिए कहा है:—

"अवि अप्पणो वि देहम्मि, नायरंति ममाइयं।"

मूर्छा के कारण मनुष्य मृत्युपर्यन्त घर, जमीन, धन-सम्पत्ति आदि मे इस प्रकार फँसा रहता है कि उसे आत्मा की ओर दृष्टि डालने का, अपने आपको पहचानने का अवकाश ही नही मिलता। जीवन के अन्तिम क्षण तक बनी रहने वाली प्रबल आसक्ति के फलस्वरूप मरने पर उसी जगह सांप बनने की मसल मशहूर है।

इसी प्रकार जो बाई ममता के कारण धन, आभूषण अथवा वस्त्र सम्भाल-सम्भाल कर रखती है, आवश्यकता से अधिक सग्रह करती है, और उन पर से ममता का त्याग किये बिना ही मर जाती है, वह उस ममता के कारण भूतनी बनती है। फिर वह अपनी सौतों के सिर पर सवार होकर धुनती है।

ममता इस लोक मे भी और परलोक मे दु:ख देने वाली है। अतएव आपसे मेरा कहना है कि अनर्थकारिणी ममता का परित्याग करो।

भाइयो! यह धन-दौलत और राज्य लक्ष्मी वेश्या के समान है। यह स्थिरवृत्ति वाली नही है। आज एक की बगल मे है तो कल दूसरे की बगल मे खडी हो जाती है। इस पर विश्वास करना सिर्फ नादानी के सिवाय और कुछ भी नही है। यह आज तक किसी भी राजा, महाराजा या सेठ साहूकार की बन कर नही रही।

एक दिन हिटलर के नाम से ससार थर्रा उठता था। वह समस्त पश्चिम मे एकच्छत्र साम्राज्य के स्वप्न देख रहा था। उनकी सेनाए प्रलय कालीन अधड के समान जिस दिशा मे चल पडती, बटाढार करती जाती थी। उसकी प्रत्येक बात में अभिमान का पुट रहता था, परन्तु आज उस हिटलर का कहाँ पता है? दुनियाँ को यह भी पता नही चल सका कि हिटलर कब, कहा और किस प्रकार मौत के मुँह मे चला गया? जो आदमी घमण्ड करता है, उसका सिर नीचा हुए बिना नही रहता।

इस संसार मे ऐसे घमण्डी हजारो-लाखो हो गये है। हम

न-किन मुर्दों का नाम गिनाएँ ! पर आज हम एक मुर्दे का क्र करते है। वह भी बड़ा घमण्डी था। वह मथुरा का राजा स' था।

इस युग मे बहुत-से लोग ऐसे हैं। जो कहा करते हैं-हम श्वर को नही मानते। हम धर्म को नही मानते। ईश्वर और धर्म ो मानना मूर्खता है, धतिंग है, ढोंग है। उस ज़माने मे ऐसा ानने वाले कम थे, परन्तु कस ऐसा ही-मानने वालों मे था।

कस का कहना था – ईश्वर की पूजा मत करो, ईश्वर की उपासना और भक्ति मत करो। दुनिया मे ईश्वर कोई है ही नही।

कस को अपनी शक्ति पर ऐसा घमण्ड था कि न पूछो बात ! वह गरज-गरज कर कहता था—जाया है किसी माता ने ऐसा पूत जो मेरे सामने सिर उठा कर खडा हो सके ! मेरी तलवार मे वह ताकत है कि सारी दुनिया को थर्रा दे !

अपने नास्तिकतापूर्ण विचारो के कारण वह स्वार्थी और निर्दयी बन गया था। दया उसके दिल को छू भी नही गई थी। क्रूर से क्रूर कृत्य करने मे उसे सकोच नही होता था। अत्याचार करने मे उसे झिझक नही होती थी। वह अपने पापो का घड़ा भर रहा था।

सेर होय मत फिरो जगत में,
सवा सेर मिल जायगा कभी।

जो सेर होकर फिरता है, उसे कभी न कभी सवा सेर अवश्य मिल जाता है।

चिउंटी के जब पर आते हैं तो लोग कहते हैं--यह पर नही, मरने की निशानी है। यमराज का नोटिस है !

जब किसी आदमी मे घमण्ड का भाव अत्यधिक बढ गया हो और वह घमण्ड के कारण फूल रहा हो तो समझो कि इसकी मौत इसके सिर पर चक्कर काट रही है! कस के सिर पर ऐसा ही घमण्ड छाया हुआ था !

गर्मी की हद हो जाती है तो वर्षा का आगमन होता है । यह प्रकृति का विधान है। कंस के अत्याचारो की हद हो चुकी थी, अतएव जनता आशा लगाये बैठी थी कि किसी मर्यादा-पुरुष का जन्म होना चाहिए। जनता की आशा पूरी हुई और कर्मवीर कृष्ण का जन्म हुआ ।

मतवाला हाथी अभिमान में अन्धा होकर अपने सामने किसी को कुछ गिनता ही नही है। और जब वह पहाड के पास पहुँच कर अपने दन्तशूलो से पहाड़ मे टक्करें लगाता है तो बताओ किसके दांत टूटते है ? किसके होश ठिकाने लगते हैं ?

मेंढक तभी तक फुदकता फिरता है जब तक कि उसे नाग-राज के दर्शन नही होते। कस का अभिमान भी तभी तक कायम रह सकता था, जब तक कि श्रीकृष्णजी का आविर्भाव नही हुआ था ।

मृग तभी तक उछलता फिरता है और चौकडी भरता है, जब तक उसे वनराज के दर्शन नही होते। कस का अभिमान भी तभी तक कायम रह सकता था जब तक कि कृष्ण वासुदेव का आविर्भाव नही हुआ।

चन्द्रमा तब तक ही प्रकाशमान रहता है, जब तक भुवन-भास्कर सूर्य देव का उदय नही होता।

इसी को समयचक्र का परिवर्त्तन कहते हैं। भाई ! हर्ष और विषाद का जोडा है। जो सूर्य प्रातः काल उदित होता है, सध्या समय उसे अस्त होना पड़ता है। कहा है:—

ऊगे सो तो आथमें, फूले सो कुम्हलाय।
जनमे सो निश्चय मरे सरे, कौन अमर हो आय॥

पतिव्रता बालक और मुनि जो बात कह देते हैं, वह एका एक निष्फल नही होती। यह बात सारा संसार जानता है।

राजा कस ने वसुदेव और देवकी को कितना कष्ट पहुँचाया, इस कथा का अगर वर्णन किया जाय तो आपको रोमाच हो जाय !

हमारे यहाँ भारत में पहले मुगल बादशाहों का शासन था। जब एक बादशाह ने गुरु तेगबहादुर आदि को, धर्मान्ध होकर तलवार के घाट उतारा तो उनकी बादशाहत भी मिट्टी में मिल गई।

जालिमो को न कभी फूलते फलते देखा,
बल्कि दम उनका बुरी तरह निकलते देखा॥
कल जो गुल नोशों के सर इतराते थे,
आज पैरो से उन्हे हमने कुचलते देखा॥

जब जुल्मी जुल्म करने से बाज नही आता तो उसका चचा भी कोई न कोई आगे आ जाता है।

महारानी देवकी की कुक्षि मे हरि का आगमन हुआ। उनके आने से पूर्व देवजी को सात महास्वप्न दिखलाई दिये। माता देवकी ने सिंह, सूर्य, चन्द्रमा, गज, अग्निशिखा और ध्वजा आदि स्वप्न में देखे। सातवे स्वर्ग से अवतरित होकर श्रीकृष्ण देवकीजी के गर्भ मे आये उन्होने अपने आगमन से पहले, स्वप्नो के रूप मे मानो अपने आगमन की सूचना दे दी।

जगत् को सूचना दे दो कि अब भगवान् आते है।
जमी पर कृष्ण बन कर आज हरि मेहमान आते हैं॥

महारानी की नीद खुली। स्वप्नों का स्मरण करके उनके हृदय मे आह्लाद और उल्लास उत्पन्न हुआ। वह उसी समय अपनी शय्या से उठकर वसुदेवजी के पास पहुची और प्रसन्नतापूर्वक, विनय के साथ कहने लगी, नाथ! आज मैंने सात महास्वप्न देखे हैं। जान पडता है, कोई विशिष्ट शक्तिशाली महापुरुष आना चाहता है। स्वामिन्! मैं छह--छह पुत्रो का प्रसव कर चुकी, परन्तु हम लोगो के देखते-देखते भाई (कंस) ने उनके प्राण ले लिये। आपका और मेरा कुछ भी जोर न चल सका।

इतना कहते-कहते देवकी का कंठ रुक गया। वह रोने लगी। आगे बोलने मे असमर्थ हो गई।

पूर्वकथा—प्रसंग

जब देवकी का विवाह हुए ज्यादा दिन नही हुए थे, उस

समय की बात है। कंस के छोटे भाई एवंताकुमार (अतिमुक्तक-कुमार) साधु के वेष मे, आहार-पानी लेने के लिए कंस के महल मे पधारे। वे एक महीने में एक ही बार आहार ग्रहण करते थे। वह दिन उनके पारणा का दिन था।

एवंताकुमार छोटे थे तब उन्होने देखा कि उनके बडे भाई कन्स ने पिता को कारागार मे कैद कर दिया है और आप राजा बन बैठा है! कंस का यह अमानुषिक अत्याचार उन्हे सहन नही हो सका। मगर वह विवश थे। सत्ता कंस के हाथ मे थी और एवंताकुमार उसे सही राह पर लाने मे समर्थ नही थे। ऐसी स्थिति मे उन्होने कंस के साथ असहयोग कर देना ही उचित समझा। वे अत्याचारी के शासन मे रहना अयोग्य समझ कर साधु हो गए।

इस प्रकार मुनि बने हुए एवंताकुमार जब लौट कर वापिस जाने लगे तो कंस की पत्नी ने द्वार रोक कर उनसे कहा--देवर! क्या तुम बाबाजी बन गये? तुम क्षत्रियपुत्र होकर घर-घर भीख माँगते फिरते हो! जानते हो, इससे हमारी ख्याति मे कितना बट्टा लगता है? कौवा और कुत्ता भी मेहनत करके पेट पाल लेता है और तुम मनुष्य होकर भी पेट पालने के लिए श्रम नही कर सकते? सम्भव है, तुम्हारी लज्जा नष्ट हो गई हो, आत्मा गिर गई हो, परन्तु हमे क्यो लजाते हो? हमारी आत्मा तो गिरी नहीं है। भलाई इसी मे है कि घर लौट आओ और गृहस्थ बन कर रहो। भिखमगी का यह धन्धा कुलीन पुरुषो को नही सोहता!

रानी के यह कठोर और अज्ञानमय वचन सुनकर भी एवंता-कुमार मुनि शान्त रहे। उन्होने बाहर जाने देने के लिए रास्ता

छोड़ देने का आग्रह किया, किन्तु रानी टस से मस नही हुई। जब काफी समय हो गया तो मुनि के मन में रोष का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होने अपने ज्ञान से जान कर कहा—रानी! घमण्ड मत करो। अपनी कुलीनता और राज्यविभूति के मद मे चूर होकर विवेकहीन मत बनो। यह अभिमान ज्यादा दिनो तक नही ठहर सकता। तू जिस सौभाग्य पर इतरा रही है, वह समाप्त होने को तैयार है। तुझे शीघ्र ही कौने मे बैठ कर रोना पडेगा। याद रखना, जिस देवकी के साथ तू क्रीड़ा कर रही है, उसी का सातवाँ पुत्र तेरे पति को परलोक पहुचाएगा। अब हट जा मेरे सामने से।

जगल मे बहुत बिल होते हैं, सब मे लकडी मत डालो। याद रक्खो सब मे चूहे नही होते। न मालूम किस मे से काला नाग निकल आवे और आपको लेने के देने पड़ जाएँ!

मुनि के तेज के सामने रानी ठहर नही सकी। वह एक ओर हट गई और मुनि चल दिये।

मुनि के चले जाने पर उनकी कही बात पर विचार करके वह काँप उठी। अपने दुर्भाग्य की कल्पना उसके मस्तिष्क मे मूर्त्तिमती हो उठी। वह अपने आपको सम्भाल न सकी। अन्तरतर की व्यथा नेत्रो के द्वार से बाहर उमड़ पड़ी।

कंस के आने पर मुनि द्वारा की हुई भविष्यवाणी रानी ने उसे सुनाई। कस बोला—तुमने महात्मा को छेड़ा ही क्यो? लेकिन अब चिन्ता करने से कोई लाभ नही होगा। मैं ऐसी

व्यवस्था करूँगा कि मुनि की भविष्यवाणी झूठी हो जाय। मेरी शक्ति भी क्या कम है ? तुम निश्चिन्त रहो।

आखिर वसुदेव को डरा धमका कर कंस ने देवकी के सातो गर्भ मांग लिये। जब देवकी को इस बात का पता लगा तो उसकी व्यथा का कोई पार न रहा।

\+　　　　+　　　　+

भद्दिलपुर मे, जिसे सम्भवत. आजकल भेलसा कहते हैं, एक सेठ रहते थे। उनकी धर्मपत्नी सुलसा ने किसी निमित्तवेत्ता को अपना हाथ दिखलाया। हाथ देख कर वह किंचित् विषाद के साथ चुप रह गया। जब सुलसा ने उसके विषाद का कारण पूछा तो वह बोला—देवी ! तुम्हारे हाथ की रेखाएँ बतलाती है कि तुम्हारे छह पुत्र होगे, किन्तु वे सब मृतक ही होगे।

निमित्तवेत्ता की बात सुनकर सुलसा बहुत दु खी हुई। आखिर उसने हरिणगमेषी देवता की आराधना की। देव प्रसन्न हुआ और सुलसा के समक्ष उपस्थित हुआ। सुलसा ने अपना रोना रोया। देवता ने कहा—मृतक बालकों को जीवित कर देना हमारी सामर्थ्य से बाहर है। अलबत्ता एक उपाय हो सकता है। जिस समय तुम्हार उदर से पुत्रो का प्रसव होगा, उसी समय वसुदेव की रानी देवकी भी पुत्रो का प्रसव करेगी। उन पुत्रों को मे अलक्षित रूप में तुम्हारे पास पहुंचा दूँगा और तुम्हारे मृतक पुत्र उनके पास भेज दूँगा।

सुलसा इसके लिए तैयार हो गई। इस प्रकार दोनो के पुत्रो की अदला बदली होती रही।

कंस को प्रसन्नता का पार नही। वह अपने प्रभाव को ही इसका कारण समझ कर फूला नहीं समाता। कहता है–देखा मेरे तेज को! मेरे डर से देवकी के बच्चे गर्भ मे ही मर जाते है!

इस प्रकार देवकी के छह पुत्र भद्दिलपुर चले गये। बड़े लाड़ प्यार के साथ वहाँ उनका पालन पोषण हुआ। उनके पश्चात् सातवें गिरिधारी आते हैं। सातवी बार गर्भवती होने पर देवकी ने बड़ी ही गम्भीर व्यथा के साथ वसुदेवजी से कहा—अहा! मेरे छह पुत्र मारे गये। अब यह सातवाँ पुत्र आ रहा है। लक्षणो से मालूम होता है, यह अत्यन्त भाग्यशालो और पराक्रमी होगा। इसके प्राण बचाने का प्रत्येक सम्भव उपाय करना होगा। एक भी पुत्र बच गया तो हम सन्तोप मान लेंगे, अपना नाम भी रह जायगा।

जब देवकी का विवाह हुआ था, उस समय दहेज मे दश गोकुल* गायें, नन्द अहीर और यशोदा, यह सब मिले थे। यह भी तय हुआ था कि इस भूमि मे जो पहुच जायगा, वह निर्भय है। नन्द वहा राजा की भ ति रहता था।

एक बार देवकी और यशोदा का मिलाप हुआ। दोनो मे खूब प्रेम-पूर्ण बाते हुई। बातचीत के सिलसिले मे देवको की आंखो से आंसू बहने लगे। यह देख कर यशोदा का भी गला भर आया। उसने पूछा—वहिन! तुम्हारे रोने का क्या कारण है?

'कुछ नही बहिन, अपने भाग्य को रोती हूँ' देवकी ने कहा।

*दस हजार गायो का एक गोकुल होता है।

तब यशोदा ने आत्मीयता का परिचय देते हुए कहा—क्या मुझे गैर समझती हो ? अपने दुख मे मुझे साथिनी नही बनाओगी तो मेरे प्रति स्नेह होने का सबूत ही क्या होगा ?

तब देवकी बोली - क्या बतलाऊँ बहिन ! मेरे ६-६ पुत्र हुए, मगर दुष्ट कस ने एक को भी नही छोड़ा। इस बार सातवां गर्भ है। अब न जाने क्या होनहार है !

तब यशोदा ने कहा—चिन्ता मत करो। मैं भी गर्भवती हूँ। मेरे सन्तान होगी तो वह गायें चराने के सिवाय और क्या करेगी ? फिर तुम्हारी भी तो मेरी ही सन्तान होगी। इसलिए तुम अपना पुत्र मेरे यहाँ किसी युक्ति से भेज देना और मैं अपनी सन्तान तुम्हारे पास भेज दूंगी। इस उपाय से तुम्हारा लाल कस के हाथो मरने से बच जायगा।

यशोदा का हृदय कितना विशाल है ! उसका उत्सर्ग कितना महान् है ! देवकी के सुख के लिए अपनी प्राणप्रिय संतति को काल के हाथ में सौंप देने से बढ कर उदारता और क्या हो सकती है !

भाइयो ! यशोदा के चरित से कुछ सीखो। दूसरो के दुःख को दूर करने के लिए अगर कुछ त्याग करना पडता है तो पीछे न हटो।

देवकी रानी का गर्भ दिनो दिन बढने लगा। चार मास व्यतीत होने पर देवकी को दोहद हुआ कि दुष्ट का दमन करूँ और सिह से खेलूँ। उसी समय वह वसुदेवजी की तलवार उठा

कर उसमे अपना मुँह देखने लगी। इसके वाद तलवार हाथ मे लेकर वाहर निकलने को तैयार हुई। उसी समय वसुदेवजी वहा आ पहुँचे। उन्होने देवकी को समझाते हुए कहा—परिस्थिति का विचार करो। तुम्हारे इस व्यवहार से गर्भस्थ बालक को हानि पहुचेगी। उसका भविष्य संकटपूर्ण बन जायगा। धैर्य धारण करो।

देवकी वीररस मे डूबी थी। उसने कहा—मैं इस तलवार से दुष्ट कंस का कण्ठ काट कर उसका मुकुट उडा दूंगी।

मगर वसुदेवजी ने फिर कहा—कंस का गला काटने वाले की रक्षा कर लोगी तो कस का गला कटा ही समझो। उसके जिम्मे का काम तुम स्वय करना चाहती हो, यह अनाधिकार व्यापार है।

इतना कह कर वसुदेव ने देवकी को भुजाओ मे कस कर पलग पर बिठला दिया।

राजा कंस को जब सूचना मिली कि देवकी गर्भवती है तो वह सतर्क हो गया और उसने देवकी-वसुदेव के निवास के चारो ओर पहरा लगा दिया। इस बार कंस वहुत सावधान था, क्योकि उसे इसी सातवे पुत्र से भय था।

खाँसी, कस्तूरी, दोस्ती, खुजली, प्रीति और गर्भ छिप नही सकते। कस ने भवन के दरवाजो पर शेर के पीजरे रक्खे, जिससे कोई वाहर न निकल सके और उनके पीछे वहादुर सिपाहियो का पहरा बिठा दिया। 'प्रेमसागर' मे तो यहा तक कहा है कि कस

की के हाथो मे हथकडिया और पैरो मे बेडिया भी डाल थी। देवकी नमस्कार मन्त्र का जाप करती और प्रभु से ा करती थी कि—हे प्रभो ! किसी प्रकार मेरे पुत्र की हो !

कस दिन--रात यही सोचा करता था कि कब देवकी के ाक का जन्म हो और कब मैं उसके प्राण लेकर निश्चिन्त होऊँ ! तु बिल्ली के कहने से ही क्या छीका टूटता है ? हरि का जब म होगा तो उनके पुण्य प्रताप से किसी की कुछ भी नही ाने वाली है ।

निन्यानवे लाख मासखमण की तपश्चर्या करने वाले पुरुषोत्तम ष्ण अवतरित होने वाले हैं ! कोई साधारण व्यक्ति नही आ हा है । उसकी तपश्चर्या के असाधारण तेज के सामने कस की ामस्त सावधानी वृथा है ! मगर अज्ञानी कस पर्वत से सिर ःकराने को तैयार हो रहा है !

भाद्रपद महीने के कृष्ण पक्ष की अष्टमी के रात्रि आई । बुधवार का दिन और रोहिणी नक्षत्र था । उस दिन तूफानी हवा चल रही थी । पानी की झडी लग रही थी । मेघ गर्जना कर रहे थे । चारो ओर घोर अन्धकार व्याप्त था । ऐसा जान पडता था, मानो प्रलयकाल आ उपस्थित हुआ हो और सचमुच कस के लिए यह प्रलयकाल ही था !

उसी समय श्रीकृष्णजी का जन्म हुआ । देवकी ने कापते हुए हृदय से और दबी जबान से वसुदेवजी से कहा—आप जाग रहे हैं ? जरा देखिए तो सही, कितना सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ

है। वसुदेवजी पास आये। उन्होने कृष्ण को देखा और गद्‌गद् हो गये। देवकी ने कहा—किसी भी मूल्य पर बालक की प्राण-रक्षा करनी है। इसे कृपा करके यशोदा के घर पहुँचा दीजिए।

वसुदेव नवजात बालक को गोद मे लेकर ज्यो ही तैयार हुए कि उनका हृदय उत्साह और साहस से परिपूर्ण हो गया। उन्होने देखा- शेर सो रहे है और पहरेदार भी बेहोश पड़े है। द्वार खुले है! महापुरुष की रक्षा के लिए उसके प्रबल पुण्य ने आकर मानो सारी अनुकूल व्यवस्था कर दी है!

इन सब अनुकूलताओ से लाभ उठाते हुए वसुदेव बाहर निकल पड़े। गोद मे कृष्ण को लेकर, बाजार मे होते हुए, वे जब शहर के फाटक पर पहुचे तो देखा कि फाटक मे ताले जड़े है! क्षण भर के लिए वसुदेव निराश हो गये। उन्होने देखा-इस फाटक को पार करना असम्भव है और सारी योजना मिट्टी मे मिल जाने को है! मगर अधिक देर नही लगी। आकाशवाणी उनके कानो मे पडी—हरि का अगूठा तालो को लगाओ। ताले झड़ जाएंगे। वसुदेवजी ने ऐसा ही किया और ताले टूट गये।

वसुदेवजी शीघ्रता के साथ नगर के बाहर जा पहुचे। आगे बढे तो यमुना आडी आई। यमुना मे बाढ आ रही थी पार करना असम्भव प्रतीत हुआ। परन्तु —

हरि करे सो खरी।

वसुदेव को अब तक की घटनाओ से विश्वास हो चुका था कि बालक का प्रभाव असाधारण है और हर हालत मे इसके

ाणो की रक्षा होनी है। अतएव उन्होंने बाढ की परवाह न करके मुना मे प्रवेश किया ! वह दो-चार डग बढे ही थे कि पानी कृष्ण पैरो को छुआ। उसी समय पानी फट कर इधर-उधर हो गया ार रास्ता बन गया। वसुदेव अब निश्चिन्त थे। उनकी उस समय ी प्रसन्नता का कोई महाकवि भी वर्णन नही कर सकता।

वसुदेवजी सीधे नन्द के घर पहुंचे और उसका द्वार खट टाया। यशोदा समझ गई। उसने धीमे स्वर से कहा द्वार ोल दीजिए। द्वार खुला, और वसुदेवजी ने नन्द के घर मे प्रवेश िया और बालकृष्ण को यशोदा की गोदी मे रख दिया। यशोदा लक को देख कर मानो पागल हो उठी। उसने बड़े ही प्यार से ृष्णजी को छाती से लगा कर पुचकारा। कृष्णजी की अनुपम ा राशि देख कर वह निहाल हो गई। फिर उसने वसुदेव से हा—जाइए, क्षण भर का विलम्ब भी इस समय सकट जनक हो कता है। शीघ्र लौट जाइए और इस कन्या को लेते जाइए। ालक की चिन्ता न करना। यह मेरे ही हृदय का टुकडा है!

यशोदा की बात सुनकर नन्द चकित रह गये। बोले-अरी, क्या कर रही है? यशोदा बोली—क्यो, क्या यह सौदा गा है? लड़की देकर लडका, और फिर ऐसा अद्वितीय लडका, ा क्या घाटे का सौदा है?

आखिर वसुदेवजी लडकी को लेकर देवकी के पास लौट । उस समय तक सब पहरेदार गाढी नीद मे सो रहे थे। ो को पता न चला कि तीन खण्ड का नाथ अवतरित हो चुका ार सुरक्षित स्थान पर पहुच चुका है!

थोडी ही देर हुई थी कि लड़की रोने लगी। उसके रोने की आवाज सुनकर पहरेदारो की निद्रा भङ्ग हुई। जिस क्षण के लिए यह सब पहरे की व्यवस्था थी, वही क्षण आ पहुचा। सब सजग और सावधान हो गये और सतर्कता के साथ अकड कर पहरा देने लगे।

उसी समय कस को समाचार पहुँचाया गया। कंस भी घबराया हुआ आया। उस समय उसे ऐसा लगता था, मानो अपनी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए वह जा रहा हो! पर यह क्या! जब उसने देवकी के पास पहुच कर देखा कि लडका नहीं, लडकी जनमी है तो वह अट्टहास कर उठा! कहने लगा—साधु भी झूठे होते हैं? यह बालिका बेचारी कर ही क्या सकती है!

भाइयों! मद और मोह के प्रभाव को देखो और पुण्य के प्रभाव का भी विचार करो। तुम अपनी और अपनी सन्तान की रक्षा करने के लिए सैकडो उपाय करते हो, परन्तु यह सोचो कि असल मे रक्षा करने वाला कौन है? बालक कृष्ण की रक्षा किसने की? वास्तव मे पुण्य से ही रक्षा होती है। वसुदेव की क्या शक्ति थी जो कृष्ण की रक्षा कर सकते! परन्तु कृष्ण के अपरिमित पुण्य ने सहज ही अपनी रक्षा कर ली। वसुदेव तो निमित्त मात्र थे। यह सोच कर पुण्य का सचय करो। पुण्य के सिवाय रक्षा करने वाला और कोई नही है।

कस मद मे चूर होकर कहता है-लडकी के रूप में मेरी मौत तलवार से कटने आई है! आज मैं अपनी मौत को मार कर अमरत्व प्राप्त करूँगा।

दूसरे लोगो ने कहा—वीर क्षत्रिय बूढे, रोगी, स्त्री और शरणागत पर हाथ नही उठाते । ऐसा करना क्षत्रियधर्म से प्रतिकूल है । यह वीरता का अपमान है । फिर यह तो नवजात कन्या है ! इस पर तलवार चलाना आप जैसे वीर के लिए शोभा की बात नही है ।

कस ने कहा—अच्छी बात है । मैं इसे छोड देता हूँ ।

'प्रेमसागर' मे वतलाया गया है कि कस ने उस कन्या को पछाड दिया, परन्तु वह कन्या विजली की भाँति आकाश में उड गई और कहती गई—रे दुष्ट तुझे मारने-वाला तो कभी का पैदा हो चुका है ।

कस अव निश्चिन्त हो गया । उसने अव निर्भय होकर और अधिक अत्याचार करना आरम्भ कर दिया । इस प्रकार उसके पापो का घडा पूरा भर गया ।

उधर नन्द के घर आनन्द मनाया जाने लगा । मंगल-वाद्य वजने लगे । गोकुल की नारिया हर्षविभोर होकर गाने और नाचने लगी । ग्वाल-वाल आनन्द मनाने लगे । सर्वत्र हर्ष, उल्लास और उत्साह दिखलाई पडने लगा । जिस किसी ने भी वालकृष्ण का मोहन-मुखडा देखा, निहाल हो गया । वह फूला नही समाया ।

भाइयों ! देखो कर्म की विचित्र गति को ! साधारण घर में वालक का जन्म होता है तो भी फूल की थाली वजती है, वन्दूके छूटती हैं । मगर कृष्ण जैसे असाधारण पुरुष का जन्म होने पर भी मथुरा मे थाली तक नही वजती !

कृष्णजी चन्द्रमा की कला की भाँति प्रतिदिन बढने लगे। यशोदा के हर्ष का क्या कहना है! वह बालक मे भूली सी रहती है। कृष्णजी को सुन्दर पालने में सुलाती है, झुलाती है, कभी कभी नाचती और गाती है और कभी बलैयां लेती है। इस प्रकार एक महीने के लगभग हो गया। देवकी का हृदय अपने प्राण प्रिय शिशु को देखने के लिए छटपटाने लगा। वह वसुदेवजी-से कहने लगी—मैंने एक बार भी अपने लला का मुँह नही देखा। मैं तो गोकुल जाऊँगी।

आखिर देवकी वत्स द्वादशी पूजने के बहाने यशोदा के घर पर जाती है। बहुत सावधान होकर, चौकन्नी होकर यशोदा के घर मे प्रवेश करती है और श्रीकृष्ण को देखने के लिए उत्कठित हो उठती है। कहते हैं-देवकी ने ही वत्स द्वादशी चलाई थी।

देवकी ने यशोदा के घर मे प्रवेश करके कहा—हे यशोदा, तेने बडा ही सुन्दर बेटा जाया है। ला, मैं भी इसे खिला लूँ। और चट से उसे अपनी छाती से लगा लेती है। यशोदा मुस्किरा उठती है।

समय बडा बलवान् है! आपके बच्चे को कोई दूसरे का बच्चा कह दे तो आपको कितनी मार्मिक वेदना हो? लेकिन समय के प्रभाव से आज देवकी स्वयं अपने हृदय के टुकड़े को यशोदा नन्दन बतला रही है! उसके हृदय की पीड़ा को कौन अनुभव कर सकता है? अनुभव क्या, उस पीडा की सही कल्पना करना भी कठिन है!

देवकी, कृष्ण को बार-बार चूमती और पुचकारती है।

ऊपर-नीचे उठाती है। उसका हृदय गद्‌गद हो जाता है। आंखो से हर्ष के आंसू बहने लगते हैं और वात्सल्य के आधिक्य के कारण स्तनों से दूध झरने लगता है। देवकी की काँचली दूध से भीग जाती है!

कृष्णजी के वक्षस्थल पर स्तन के चिह्न नही थे। स्तन-चिह्नों के स्थान पर स्वस्तिक के निशान बने थे। उनका ललाट चन्द्रमा के समान देदीप्यमान और विशाल था। उनके हाथ चूडी उतार थे। देवकी ने जी भर कर प्यार किया। फिर कहने लगी:-

सज्जन जन का हार हृदय का,
दुर्जन का हो काल।
तुम-हम वंश का यह उजियाला,
ऐसा हो नन्दलाल॥

देवकी फिर कहती है--

दूध दही नवनीत यशोदा! रोज खिलाना,
हाथों हाथ रमाना इसको कभी नही रुलवाना॥

अन्त मे आशीर्वाद देती हुई कहती है:--

रहों चिरंजी लाल सांवरा, श्री नन्द के लाल।
दुर्जन भंजन सज्जन-रंजन, यदुवंशी-प्रतिपाल।

इस प्रकार अपने आन्तरिक भावो का स्त्रोत बहा कर, मन मसोस कर, विवश देवकी फिर मथुरा मे आ गई।

इसके बाद केडा चौथ, कुवारी पाचम आदि के बहाने वह बार-बार गोकुल मे आती है और अपने नेत्रो की तृषा शान्त कर जाती है। परन्तु यह सब होता है, छिपे-छिपे। देवकी भय के कारण अपने आनन्द को व्यक्त नही कर सकती।

भाइयो! कृष्णजी के जीवन की महिमा बहुत विशाल है। उन्होने अपने बाल जीवन मे, जो-जो आश्चर्यजनक काम कर दिखाये, उनका वर्णन करना भी कठिन है। इतना समय नही कि उन सब का साधारण उल्लेख भी किया जा सके। कृष्णजी की प्रशंसा से ग्रथ के ग्रथ भरे पड़े हैं। तीन खण्ड के नाथ श्रीकृष्ण वासुदेव के जीवन का निचोड अगर देखना चाहे तो वह यही है कि अन्याय और अनीति का विनाश करना और नीति की प्रतिष्ठा करना। उनका शत्रु तभी तक शत्रु था जब तक कि वह अनीति की राह पर चल रहा हो। उसने अनीति त्यागी और क्षमायाचना की कि बस, उसे क्षमा कर दिया। फिर वे उस पर वैरभाव नही रखते थे। यह उनके जीवन की उदारता सब को सीखनी चाहिए।

भाइयो! आज श्रीकृष्णजी का जन्म-दिवस है. अन्तगडसूत्र मे प्रारम्भिक पाँच वर्गो मे यदुवशियो का ही वर्णन है। अन्तगडसूत्र पर्युषणपर्व के अवसर पर सुनने को मिलेगा। आज कृष्णजन्म का ही वर्णन किया है। उनके जीवन पर प्रकाश नही डाला जा सका। मगर उनके जीवन की बहुत-सी घटनाएँ





महाचाण्डाल-क्रोध

स्तुति :-

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याम् ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व—
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाने वाली है, समीचीन धर्म का मर्म प्रकट करने मे अत्यन्त दक्ष

और उसकी सब से बडी विशेषता तो यह है कि वह समस्त भाषाओ के रूप मे परिणत हो जाती है। अर्थात् देव, मनुष्य आदि सभी विभिन्न भाषाभाषी श्रोता आपकी दिव्यध्वनि को अपनी-अपनी भाषा के रूप मे समझ लेते हैं। यह भगवान् का आठवाँ अतिशय है।

स्वर्ग, नरक, मनुष्य और तिर्यञ्च गति मे गाया हुआ जीव फिर जन्म ग्रहण करता है, किन्तु अपवर्ग जाने वाला जीव वापिस नही आता। उसे फिर कभी जन्म-मरण के चक्कर मे नही पडना पड़ता। इस विषय मे गीता मे कहा है—

यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद् धाम परमं मम।

अर्थात् जहाँ जाने पर फिर आना नही होता, वही मेरा स्थान है—वही परमात्मा का परम धाम है।

भगवान् ऋषभदेव की वाणी पीयूष की भाँति अमरत्व प्रदान करने वाली है। उन भगवान् का वर्णन भागवत पुराण के पाचवे स्कंध मे भी आया है। भगवान् ऋषभदेव अखिल आर्य-जाति के पूजनीय और वदनीय महापुरुष हुए हैं। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! समस्त ज्ञानी पुरुषों ने एक स्वर से यही कहा है कि आत्मा अपने द्वारा आचरित अशुभ कर्मों से मलीन होती है। पाप-कर्म आत्मा को गिराने वाले हैं। जैसा कि कल और परसो बतलाया गया है, पाप के अठारह भेद हैं। इन पापो का जिन्होंने परित्याग किया, उनकी आत्मा उज्ज्वल हो गई। मगर

खेद है कि ससारी जीव अनादि-कालीन संस्कारो से प्रेरित होकर पापो मे परायण रहते हैं। आज विजयकुमार और विजयाकुमारी के समान ब्रह्मचर्यपरायण महात्मा कहाँ है? जम्बूकुमार के सदृश प्रगाढ वैराग्यवान् और महाब्रह्मचारी कहा हैं? अगर इनका वर्णन करने बैठे तो महीनो लग जाएँ।

सती य न सीता सारखी,
रती य न राम समान ।
जती य न जम्बू सारखा,
गती य न मोक्ष समान ॥

सीता सरीखी सती ससार मे कितनी हैं? राम के समान लोकप्रिय एवं सुन्दर समार मे कितने मर्यादा-पुरुष हुए? जम्बूकुमार जैसे विनीत यति कहा? और मोक्ष के समान दूसरी गति नही है।

बहिनो! भाइयो! और महासतियो! उक्त आदर्श को तुम अपने सामने रक्खो। बहिनो! तुम सीता का आदर्श ग्रहण करो। भाइयो! तुम राम को अपना आदर्श बनाओ। साधुओ! तुम्हारे समक्ष जम्बूकुमार का आदर्श रहना चाहिए और सतियो! तुम जम्बूकुमार की सती बनी हुई पत्नियों को अपना आदर्श मानो। प्रतिदिन उनका स्मरण करो और उनके जीवन-पथ पर चलने का सकल्प करो और चलने का प्रयत्न भी करो। इससे तुम्हारा जीवन धन्य हो जाएगा। तुम्हारी आत्मा का कल्याण हो जायगा।

पर इस सम्बन्ध मे एक बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए। वह यह है कि जब तक तुम्हारे अन्तःकरण मे आसक्ति की अति मात्रा विद्यमान रहेगी, तब तक तुम उनके पथ का अनुसरण करने मे समर्थ न हो सकोगे। आसक्ति, मोह या ममता का भाव, चाहे वह शरीर के प्रति हो, भोगोपभोगो के प्रति हो या धन-सम्पत्ति अथवा कुटुम्ब-परिवार के प्रति हो, विपत्ति का ही कारण है। ममता सताप की जननी है। उससे कभी किसी को शान्ति नही मिली और न मिल ही सकती है।

ममता के कारण ही जीव चतुर्गति रूप संसार मे भ्रमण करता रहता है। ममता को मारने के लिए समता की आवश्यकता है।

वर्णमाला में ३२ अक्षर हैं। उनमे से एक अक्षर नरक का विरोधी है और दूसरा मोक्ष का विरोधी है। वह दो वर्ण हैं— 'द' और 'ल'। दान दो, वस्त्र दो, मकान दो और अभय दो—यह सब नरक के विरोधी है और 'लाओ, लाओ' मोक्ष का विरोधी है। अर्थात् धन लाओ, स्त्री लाओ वस्त्र लाओ, इस 'लाओ' की लालसा से मोक्ष का विरोधी होता है। परन्तु—

लल्ला से चित लग रहा, दद्दा से रहे दूर।

आज कल तो देने का नाम नही लेने की ओर ही लोगो की चित्तवृत्ति लगी दिखाई देती है। यही मूर्छा हैं, यही परिग्रह है। यह पाचवां पाप है।

छठा पाप क्रोध है। क्रोध क्या है? इच्छा के प्रतिकूल

परिस्थिति उत्पन्न होने पर अन्त:करण में जलन उत्पन्न होना, रोष का भाव उदित होना। यह क्रोध भीषण अनर्थों का मूल है। गीता मे कहा है:—

क्रोधो मूलमनर्थानां, क्रोध: संसारवर्द्धनः।
धर्मक्षयकरः क्रोधः, तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥

अर्थात्-क्रोध अनर्थो का मूल है, क्रोध ससार को बढाने वाला है, क्रोध से धर्म का नाश हो जाता है। अतएव क्रोध का परित्याग कर देना ही उचित है।

क्रोध से तपस्वी की तपस्या छिन्न भिन्न हो जाती है। जैसे हलुवे मे कपूर की धूनी दे दी जाय, कलाकद मे संखिया डाल दिया जाय तो बताओ क्या वह खाने योग्य रहेगा? उसी प्रकार तप और त्याग मे यदि क्रोध का मेल हो जाय तो सारी तपस्या व्यर्थ हो जाती है। क्रोधी अपनी तपस्या पर पानी फेर देता है।

जिस प्रकार पानी की तह मे जमे हुए कीचड को हाथ डाल कर हिला दिया जाय तो निर्मल जल भी मैला हो जाता है, इसी प्रकार क्रोध के कारण समझदार आदमी भी क्षण भर मे मूर्ख बन जाता है।

क्रोध ससार-भ्रमण की वृद्धि करने वाला और धर्म की हानि करने वाला है। क्रोध से ज्ञान, ध्यान, धर्म आदि मलीन बन जाते हैं।

भाइयो! आप मिठाई खाना छोड सकते हैं, माल-मसाला

खाना भी त्याग सकते है, परन्तु क्रोध करना नही त्याग सकते। वतलाओ तो सही, इसमे आपको क्या मजा आता है? क्रोध में क्या स्वाद है? क्या मिठास है?

क्रोध वहुत वुरा दुर्गुण है। यह अकेला ही दुर्गुण समस्त सद्गुणो को नष्ट करने वाला है। यह नरक का द्वार है। जिसने इस दरवाजे मे प्रवेश किया, उसे नरक में पहुँचते देर नही लगती। ससार के समस्त महात्मा पुरुषो ने एक स्वर से क्रोध की निन्दा की है। किसी भी धर्म के ग्रंथ को देखो, क्रोध को सभी त्याज्य वतलाते हैं।

कुरान मे गुस्से को 'हराम' कहा है। फिर भी इससे वडी मुहव्वत पाली जाती है! घर मे क्रोधी आ जाय तो लोग कहते है—वोलो मत, इस दुष्ट को काला मुँह कर जाने दो! अन्यथा अभी घर मे आग सुलग उठेगी! क्रोधी को आता देख कर कहा जाता है—काला साँप आया है!

वोलो भाइयो! किधर जाने की इच्छा है? नरक की राह जाना चाहते हो या स्वर्ग के रम्य मार्ग पर जाना चाहते हो? स्वर्ग के मार्ग पर जाना है तो क्रोध की गन्दगी छोड देनी होगी।

क्रोध की वदौलत, कई लोग दाल-शाक मे नमक कम-ज्यादा होने पर जलती हुई लकडी से गृहदेवी की पूजा करते देखे गये है।

कांसी कुत्ती कुभारजा, बोलंता गाजंत।
सोना सीसा सुघड़ नर, बोलंता लाजंत॥

क्रोध से बेभान हुई स्त्री अपने बच्चे तक को झिटक कर फैंक देती है। और जब हड्डी टूट जाती है तो वही मूर्ख स्त्री छाती पीट-पीट कर रोती है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि क्रोधी का मुँह देखना भी पाप है। भाई, जरा सोचो, समझो, विचार करो और क्रोध रूप पाप का परित्याग करो।

क्रोधी को क्रोध करते समय आपने अवश्य देखा होगा। उसका चेहरा लाल होकर तमतमा उठता है, उसके ललाट पर सलवट पड जाते है, उसका सारा शरीर थर-थर कांपने लगता है! ऐसा जान पडता है जैसे उसे भूत लग गया हो! जैसे राजा की सवारी के आगे-आगे निशान चलते हैं, उसी प्रकार क्रोध रूपी भूत की सवारी के यह सब निशान हैं।

क्रोधी की आखो में अगारे बरसते हैं। क्रोधी स्वय उन अगारो मे जलता है और फिर दूसरो को भी जलाता है।

क्रोध महा दुखखान जगत् मे,
क्रोध महा दुखखान।

क्रोधी मनुष्य विष का भी भक्षण कर लेता है। पानी मे डूब कर मर जाता है। फाँसी लगा कर प्राणो को त्याग देता है। बहुत से लोग क्रोध के कारण देश छोड कर विदेश चले गये!

एक आदमी ने क्रोध से पागल होकर जहर खा लिया। जब उसे होश आया तो वह दूसरे के गले से लिपट कर कहने लगा-भाई, ज़रा डाक्टर को बुला, मुझे बचा! परन्तु जब डाक्टर

य तो परीक्षा करके बोला—इसका तो टिकट कट चुका ! ना असम्भव है !

कई औरतें गुस्से मे आकर दूसरे के घर में घुस जाती हैं। ने सुना कि एक औरत गुस्से ही गुस्से मे भङ्गी के घर चली ! गुस्सा उतरा तो रोई और खूब रोई। पर फिर क्या हो ? से छूटा तीर फिर क्या हाथ में लौट कर आ सकता है ? र तो जिन्दगी भर का पछतावा ही शेष रह गया।

भगवान् महावीर, कृष्णजी, ईसा और मुहम्मद साहब दि सभी धर्म-प्रवर्त्तको ने क्रोध को हेय कहा है। चाहे और २ तो मे इनका मतभेद हो, पर इस विषय मे तो सभी एक मत कर कहते है क्रोध भयानक दुश्मन है। क्रोध को छोडो; उससे ो ! अन्यथा बर्बाद हो जाओगे।

क्रोधी का दिल और दिमाग काबू मे नही रहता। वह रो की हानि चाहे कर पाये अथवा न कर पाये, अपनी हानि वश्य कर बैठता है। क्रोधी धर्म-अधर्म को गिनता नही, भलाई-राई को सोचता नही और हित-अहित पर ध्यान देता नही।

क्रोधी का खून सूख जाता है। उसका शरीर रूक्ष हो जाता । क्रोधी स्वय दुखी होकर घर के सब लोगो को दुखी बना देता । उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह चिडचिडा हो जाता है। ह जो कुछ खाता-पीता है, उसका रस क्रोध की आग मे भस्म ो जाता है।

क्रोध इबादत (उपासना) को खाक मे मिला देता है।

क्रोध से दोजख (नरक) का पौधा हरा भरा होता है। यह समस्त धर्मकर्म को खाक मे मिला देता है।

आचार्य चन्द्र (चण्ड) रौद्राचार्य के उदाहरण पर ध्यान दीजिए। दुर्भाग्य से उन्हे एक नालायक चेला मिला। गुरु बड़े तपस्वी थे और उस दिन उन्हे पारणा करना था। वे रास्ते मे जा रहे थे। चौमासे के दिन थे। भिक्षा के लिए आगे-आगे गुरु और पीछे-पीछे चेला जा रहे थे।

साधुधर्म के अनुसार मुनि ईर्यासमिति का पूर्ण रूप से पालन करते हुए चल रहे थे। वे इस बात का पूरा ध्यान रख रहे थे कि उनके पैर के नीचे कोई छोटा-मोटा जीव-जन्तु, वनस्पति अथवा बीज न आ जाय। साधु इसी विचार से नगे पैर रहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

काई बैठे हाथो घोडा, पालकी मगाय के।
साधु चाले पैयां पैया चीटिया बचाय के ॥
तुलसी मगन भया हरी गुण गाय के ॥ १ ॥

सावधानी रखते हुए भी कभी--कभी गलती हो जाती है। गुरु का पात्र एक सूखी मेंढकी पर पड गया। यह देख चेले ने कहा—गुरुजी, आपने बडा भारी पाप--कर्म कर डाला है।

गुरु—क्यो ? क्या किया मैंने ?
चेला—आपने मेढक को मार डाला।
गुरु—कहा ?

चेला—यह देखिए ।

गुरु ने बड़े ध्यान से उस मेढक को देखा । उसका कलेवर सूखा था । गुरु ने चेले को समझाते हुए कहा—शिष्य ! यह तो सूखा कलेवर है । इतनी जल्दी मर कर सूख नही सकता । यह तो पहले से मृतक है ।

चेला—ठीक है महाराज ! आप विद्वान् हैं । इसी कारण उलटी--सीधी बाते कह कर टाल देते हैं, किन्तु आपको प्रायश्चित्त करना होगा ।

गुरुजी शान्त रहे । मगर चेला कब मानने वाला था । उसे आज ही गुरुजी को दोषी ठहराने का मौका मिला था । अतएव वह फिर बोला–गुरुजी, प्रायश्चित्त करना मत भूलना ।

गुरुजी फिर भी शान्त रहे ।

गुरुजी जब पारणा करने को तैयार हुए तो चेला फिर कहने लगा—गुरुजी, पहले प्रायश्चित्त कर लीजिए, फिर आहार-पानी लीजिए ।

गुरुजी ने कहा—प्रायश्चित्त की आवश्यकता होती तो मुझे कहना ही न पडता । मैं स्वय प्रायश्चित्त कर लेता ।

चेला उस समय चुप रहा । सन्ध्या को प्रतिक्रमण करते समय चेले से न रहा गया उसने फिर कहा—गुरुजी, मेढको मारने का प्रायश्चित्त करिये न ?

गुरुजी एक देवरी मे बैठ कर ईश्वर भजन और आत्म

चिन्तन कर रहे थे। चेला बार-बार उन्हे छेडता था। शास्त्र मे कहा है:—

मिउं पि चंडं पकरेन्ति सीसा।

स्वभाव से कोमल-हृदय गुरु को भी अविनीत और उदड शिष्य क्रोधी बना देता है।

वास्तव मे दुष्ट शिष्य के साथ रहने से अच्छे से अच्छे आचार्य भी धोखे मे आ जाते हैं और अपनी समग्र जीवन-साधना के फल को लुटा देते हैं। अतएव चेला बनाते समय खूब-सोच-समझ से काम लेना चाहिए।

अधिक घिसने से चंदन मे से भी आग निकल पडती है। चेले ने बार-बार छेडा तो शान्तिशील गुरुजी के चित्त मे भी क्रोध की आग भडक उठी। क्रोध ही क्रोध मे वे एक दम उठे! उन्हे खयाल न रहा कि देवरी छोटी है। उठते ही उनके माथे मे इतनी सख्त चोट आई कि सिर फट गया। उसी समय वे मृत्यु के मुँह मे पहुँच गए।

मृत्यु के पश्चात् वे राजगृह के बाहर भयकर विषधर सर्प के रूप मे उत्पन्न हुए। सर्प बडा जहरीला था। उसके जहर के कारण आसपास के वृक्ष भी सूख गये। घास भी जल गई। गाय, भैस, बकरी आदि जो भी पास मे होकर निकलता, उसे डँसे बिना न रहता।

वही ऐसा जगल था, जहाँ से गरीब लोगो की आजीविका चलती थी। काष्ठ, पत्ते, और ईंधन आदि उसी जगल से मिलते

थे। परन्तु विषधर के कारण अब वहा जाने की किसी की हिम्मत नही पडती थी। वह वन उजाड हो गया। राज्य की ओर से उधर का मार्ग बिल्कुल बन्द कर दिया गया।

भगवान् महावीर ने दीक्षा अगीकार करके घोर तप का आचरण शुरू कर दिया था। प्रभु ने लोक-कल्याण के निमित्त संसार की मोह ममता का परित्याग कर दिया था। वे विहार करते-करते उसी वन की ओर आ निकले।

दुःख से पीड़ित जीवो की पुकार ही मानों प्रभु ने सुन ली हो, इस प्रकार प्रभु का आगमन हुआ। क्योकि-

भगवान् भगत के वश में,
होते आये भगवान् भगत के वश में ॥

भगवान् जब उधर आगे बढने लगे तो लोगो ने कहा—महात्मन्! इस मार्ग से मत जाइये। आगे इस वन मे भयानक विषधर सर्प रहता है। उसकी दृष्टिमात्र से मनुष्य मर जाता है। आप इधर न जाइए।

परन्तु महापुरुष ऐसी बातो से भयभीत नही होते। वे जानते हैं कि आत्मा अमर है और शरीर सदा टिकने वाला नही है। दुखियो का दुख दूर करने मे अगर देह काम मे आ सकी तो अच्छा ही है, नही तो यह व्यर्थ है! इसका और उपयोग ही क्या है।

भगवान् किसी के रोके न रुके। उन्होने जाकर चण्डकौशिक

सांप की बांबी पर ही ध्यान लगाया। पता चलते ही चण्डकौशिक फुंकार मारता हुआ निकलता है। वह सोचता है—आज कौन मूर्ख मरने आया है! उसे क्या पता था कि स्वयं तिरने वाले और उसे तारने वाले का पदार्पण हुआ है। आखिर विषधर बाहर आता है और—

श्री स्वामी के बदन के ऊपर लिपटाता बल खाता है।
शुभ कर्मों का नाश करे, कुकर्म को क्रोध बढ़ाता है॥

विषधर भगवान् के पैरो मे लिपट जाता है और अत्यन्त क्रोधाविष्ट होकर भगवान् के पांव में डँसता है।

परन्तु यह क्या? देखते-देखते नाग भी अनिर्वचनीय आनन्द मे डुबकियां लगाने लगा। उसने सोचा—मैंने अब तक हजारो जीवधारियों का रक्तपात किया है। सभी का रक्त खारा था। पर यह रक्त मिश्री-मिश्रित दुग्ध से भी अधिक मधुर और धवल है।

उधर अनन्त करुणा के सागर महाप्रभु महावीर चण्ड-कौशिक पर करुणा के फव्वारे छोड़ रहे थे। इस प्रकार चण्ड--कौशिक की कृष्ण-लेश्या से भगवान् की शुक्ल-लेश्या का युद्ध हुआ। कहावत है—

हारता हरामी है।

आखिर कृष्णलेश्या पराजित होती है। विषधर सोचने लगता है—यह कौन लोकोत्तर महापुरुष है?

'समझ, समझ, चंडकौशिक समझ !' भगवान् ने मधुर और मृदुल कठ से कहा- तू एक महात्मा था। क्रोध के कारण तू ने यह एक दशा पाई है। अब भी तू नही समझता है! अब भी क्रोध का परित्याग नही करता तो तेरी क्या दशा होगी !'

भगवान् की वाणी विश्व का मङ्गल करने वाली होती है।

कहा वीर ने सर्पराज ! तुम पूर्व—जन्म को याद करो।
यों वार--वार क्रोधातुर हो मत जीवन को बर्बाद करो ॥

क्रोध और क्षमा के झमेले मे क्षमा की विजय हुई। चण्ड-कौशिक को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसने अपने कृत्यो के लिए पश्चात्ताप किया। उसने दया-धर्म धारण करके, अपने मुख को बाँबी मे डाल कर, भूतकालीन पापो के प्रायश्चित्त के रूप मे, आजीवन अनशन-व्रत अङ्गीकार कर लिया।

इधर यह हो रहा था, उधर लोगो ने सोचा-एक महात्मा उधर गये है। सम्भव है, वे खत्म हो गये होंगे। चलो हो सके तो उनका दाह कर्म तो कर ही दें !

यह सोच कर कुछ लोग डरते-डरते उस वन की ओर गये तो भगवान् प्रसन्न वदन अपने ध्यान से निवृत्त होकर लौट आ रहे थे। उन्होंने भगवान् को देखा तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। वे सोचने लगे-क्या इन महात्मा ने साप को मार डाला !

एक बोला-मालूम तो यही होता है, वरना किसकी मजाल है कि वहाँ से जिन्दा लौट सके !

दूसरे ने कहा—यह कोई मामूली महात्मा नही हैं। यह ज्ञातपुत्र श्रमरा महावीर हैं, दिव्य तेजस्वी और दिव्य तपस्वी ! इनका प्रभाव कुछ कम नही है। जो न हो जाय सो थोडा ! और महात्मा चिउँटी को भी बचा-बचा कर डग रखते हैं। तो साप को कैसे मारेगे ?

तीसरे ने इसका समर्थन किया।

चौथा बोला—जरा आगे चल कर ही देख लो कि बात क्या है ?

लोग साप की केंचुली से भी डरते है, तो भला ऐसे भयानक विषधर से डरने मे आश्चर्य ही क्या है ? वे आगे बढते गये। बाँबी से कुछ दूर जाकर उन्होने देखा-साँप पडा हुआ है। भय के कारण पसीना छूटने लगा। दूर से पत्थर फैंक कर देखा तो नागराज ने हिलने की भी कृपा नही की।

लोगो ने समझा, साप मर गया है। अब उनकी कुछ हिम्मत बढ़ी और पास मे गये। लकड़ी से हिलाया। मालूम हुआ, साप अभी जीवित है। ज्यो-ज्यो उसे लकड़ी से बाहर निकालने का प्रयत्न किया, वह अपना मुँह बाबी मे डालता है। वह जानता है कि उसकी दृष्टि मे भी विष है। आँखे खोल कर आदमियो की ओर देखते ही वे भस्म हो जाएँगे।

आखिर लोगो ने कहा—महात्मा की सगति से यह तो देवता हो गया है !

स्त्रिया दूध, दही, शक्कर आदि लेकर उसे पूजने निकल

पड़ी। फिर क्या था ! हजारो चीटियां इकट्ठी हो गई और सांप को काटने लगी। पर चण्ड कौशिक ने दैहिक ममता का उत्सर्ग कर दिया था, कायोत्सर्ग कर दिया था। उसने रत्ती भर भी क्रोध नही किया। आखिर चण्ड कौशिक मर कर आठवे देवलोक मे पहुँचा। सत की वाणी और सगति ने उसका उद्धार कर दिया।

चण्डकौशिक के समय से गोगा नवमी की पूजा का रिवाज चला है।

भाइयो ! तात्पर्य यह है कि क्रोध घोर अनर्थों की जड़ है। यह चाण्डाल से भी बदतर है। चाण्डाल आपके घर मे आ जाय तो आप समझते हैं कि घर अपवित्र हो गया और उसे पानी से पवित्र करते हैं। मगर क्रोध रूपी महाचाण्डाल आपके हृदय में आसन जमाता है तो आप क्या करते है ? क्या क्षमा के जल से अन्तःकरण को पवित्र बनाते हैं ? भाई यह महाचाण्डाल आत्मा मे अविर्भूत होकर आत्मा को नरक का अतिथि बनाता है।

कृष्ण कथा*

क्रोधी और दुष्टो से भले-भले आदमियो को डरना पड़ता है। क्रोधी कस के कारण ही देवकी छिप-छिप कर गोकुल में जाती थी। गोपूजा का बहाना देवकी के लिए एक अच्छा बहाना था। वह:—

मेवा और मिष्ठान्न खिलावे सुन्दर वसन पहनावे।
लावे खिलौने भाति-भाँति के, फूली नही समावे॥

*कल के 'कृष्णजन्म' के व्याख्यान से आगे का भाग।

कभी दाख, कभी पिश्ते और बादाम ले जाती है। कभी कृष्ण को खेलने के लिए तरह-तरह के खिलौने और कभी वस्त्र ले जाती है। दूसरी ओर कस का भय उसे सदैव सशंक और व्याकुल बनाये रखता है।

इस प्रकार धीरे-धीरे कृष्ण बड़े हुए। कृष्ण बचपन से ही सभी को प्यारे लगते हैं।

किसी प्रकार कस को पता चला कि नन्द के यहा एक करामाती लड़का उत्पन्न हुआ है। उसने सोचा-पानी से पहले पाल बांध लेने मे ही बुद्धिमत्ता है। यह सोच कर उसने पूतना को प्रलोभन देकर गोकुल भेजा। पूतना ने अपने स्तनो पर जहर लगा लिया और कृष्ण को खिलाने के बहाने अपनी गोद मे लेकर दूध पिलाना चाहा। मगर कृष्ण कोई साधारण बालक नही थे। उन्होने पूतना के स्तनो को ऐसे जोर से काटा कि उसने वही दम छोड दिया।

इस घटना से यशोदा सतर्क हो गई। फिर उसने अपने बच्चे को किसी को देना उचित नही समझा। यशोदा कृष्ण को कही बाहर जाने देना नही चाहती थी, मगर चचल कृष्ण कब मानने वाले थे? आख बचा कर भाग खडे होते थे। यशोदा को पता चलता तो वह खोजने निकलती और जब मिल जाते तो पकड कर ले आती थी। कई बार यशोदा ने बालकृष्ण को ऊखल से बाँध दिया, पर जरा-सी देर मे ऊखल भी उलट जाता है। इसके बाद उन्हें वृक्ष से बाध दिया, मगर देखते-देखते वृक्ष भी उखडने लगे और कृष्ण फिर आजाद होकर खेलने लगे। यह सब

देख कर यशोदा और नन्द मन ही मन प्रसन्न होते है और छाती से लगा लेते है । नन्द कहते हैं--'यशोदे ! ध्यान नही रखती, लाल को कही लग जाती तो !'

यशोदा मुस्किरा कर उत्तर देती—तुम्हारा लाल क्या ऐसा-वैसा है ! उसका ध्यान कौन रख सकता है। वही तो दुनिया का ध्यान रखता है !

जिस दिन कृष्ण रस्सी से बांधे गये थे, उसी दिन से उनका नाम दामोदर पड़ा । वे नन्द और यशोदा के अत्यन्त लाड़ले हो गये । क्षण भर के लिए भी उन्हे सूना छोडना यशोदा को अभीष्ट नही था । फिर भी—

माता दूध गरम जब करती,
हरि तब आग बुझावे ।
माई जबै विलोवे माखन,
काढ़ काढ़ कर खावे ॥

पूतना की मृत्यु से कस ने समझ लिया कि नन्द-किशोर साधारण वालक नही । उसकी उपेक्षा करना सकटजनक होगा । अतएव उसे मारने के लिए उसने एक वार शकटासुर को भेजा । मगर कृष्ण ने उसका भी वध कर दिया ।

एक वार कृष्ण ग्वाल-वालो के साथ जङ्गल मे निकल पड़े । वहां उन्होने एक भयकर साप को देखा । सव लड़के सांप को देखकर भागने लगे । परन्तु कृष्ण ने उसकी थुथरी पकड़ ली ।

साप बल खाने लगा - ऐंठने लगा। कृष्ण उसे घसीटते--घसीटते गाव की ओर आने लगे। नन्द और यशोदा को खबर मिली तो उनके पैरो तले की जमीन खिसक गई। उनकी छाती धडकने लगी। घबराये हुए उस ओर दौड़े। कृष्ण को साप पकड़े देखकर कहा—'अरे, यह क्या कर रहा है ?'

कृष्ण ने निर्भयता के साथ मुस्कराते हुए कहा—मां, तुम्हारी दही बिलौने की रस्मी बार-बार टूट जाती है। इसलिए यह मजबूत रस्सी ले आया हूँ। लो, इसे सम्भालो मा !

बहुत अनुनय करने पर कृष्ण ने साप को छोड दिया।

समय हो चुका है। आगे का वृत्तान्त फिर सुनाने की भावना है।

३१-८-४५

सप्रेम भेंट—

तालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट

महावीर बाजार, ब्यावर

